श्रीकृष्ण-सन्देश
क
४२

श्रीगंगाप्रसादजी बिरला—जिनके सहयोगसे श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ अपने संस्थापक स्वर्गीय श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाकी प्रथम पुण्य तिथिपर "एक विन्दु : एक सिन्धु" नामक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित करनेमें समर्थ हो स[illegible] और जिनकी सराहनीय सहायतासे "श्रीकृष्ण-सन्देश" चतुर्थ वर्षमें प्रविष्ट होकर उत्तरोत्तर प्रगति कर रहा

श्रीकृष्ण-सन्देश

[धर्म, अध्यात्म एवं संस्कृति-प्रधान मासिक पत्र]

प्रवर्तक
ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर बिरला

●
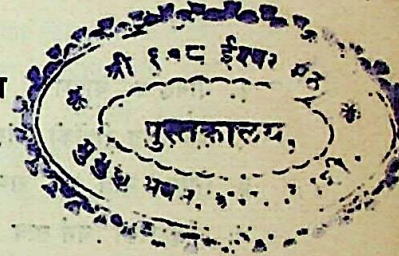
परामर्श-मण्डल

स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती
डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार 'कल्याण'-सम्पादक
श्रीजनार्दन भट्ट
श्रीहितशरण शर्मा

●●

प्रबन्ध-सम्पादक
श्रीदेवधर शर्मा

सम्पादक
श्रीव्यथितहृदय

★

प्रकाशक
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा
दूरभाष : ३३८

●

वार्षिक शुल्क
सात रुपये
आजीवन शुल्क
एकसौ इक्यावन रुपये

वर्ष : ४] नवंबर १९६८ [अङ्क : ४

विषय-सूची

●●●

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान,

अर्चना-वन्दनाके पुष्प

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानका पर्यटन एवम् दर्शन करनेपर प्रतीत होता है कि आर्य-संस्कृतिके इस दिव्य केन्द्रविन्दुकी उपेक्षाका युग समाप्त हो चुका है और भक्तों तथा मनीषियोंकी श्रद्धा और निष्ठाके फलस्वरूप यहाँसे भागवत धर्म एवं दर्शनकी तेजस्वी प्रकाशमयी किरणें विकीर्ण होंगी। काश, मैं किसीप्रकार इस ज्ञान-यज्ञमें कुछ अंश दान कर पाता। मथुराकी यात्रा इस स्थलके दर्शन बिना पूर्ण नहीं मानी जा सकती। भीष्म का एक वाक्य स्मरण आरहा है—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामं
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्य ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्ण प्रणामी न पुनर्भवाय ।

मेरी प्रार्थना है कि इस स्थानका दर्शन प्रत्येक यात्रीके हृदयमें श्रीकृष्णकी स्मृति अमर बनायें और उस मानवत्व एवम् देवत्वके सर्वोच्च शिखरका अमृतसन्देश उनके हृदयको प्रकाशित करे।

रामेश्वरनाथ मिश्र
सहायक प्रतिकर आयुक्त
(राजस्व परिषद) उत्तरप्रदेश
लखनऊ।

भगवान्का जन्मस्थान, यहाँकी व्यवस्था एवं भक्तों और सेवकोंका हार्दिक प्रेम देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अतः हृदय यही चाहता है कि भगवान् श्यामसुन्दर अपनी असीम कृपासे कार्य कर्त्ताओंके दिव्य भाव शीघ्र हीं पूर्ण करें। भगवान्का जन्मस्थान भगवान् के अनुरूप ही दिव्य एवं अद्भुत बने।

आत्मचैतन्य सर्व दर्शनाचार्य
संन्यासी संस्कृत कालेज
विश्वनाथ गली, वाराणसी।

बहुत प्रभावशाली, स्वच्छ एवं शान्तिपूर्ण वातावरणका स्थान।

एस. पी. मुकर्जी
ज्वाइन्ट सेक्रेटरी
मिनिस्ट्री ऑफ होम अफयेर्स
नई दिल्ली ।

परम प्रिय भगवान्‌की जन्मभूमिपर मेरा आगमन हुआ, यह सत्य एवं प्रेमका प्रेरणाप्रद स्थान है ।

ललिता बोस
C/o नेताजी इन्स्टीट्यूट
९ ए सेकिन्ड मेनरोड,
जय महल एक्सटेंशन, बंगलौर ।

श्रीकृष्ण जन्म स्थान मन्दिरका दर्शनकरके अत्यन्त प्रसन्नता हुई । मन्दिरका स्थान बड़ा ही सुन्दर और भव्य है । दर्शनकरके मनमें शान्तिकी भावना उत्पन्न होती है । मन्दिरकी व्यवस्थाभी बहुत सुन्दर है । सब कार्यकर्त्ता सेवाभावसे कार्य करते हैं । भारत के मन्दिरोंमें इस मन्दिरका निराला और अद्वितीय स्थान है ।

नरोत्तमदास स्वामी
पीठाधिपति, राजस्थानी साहित्य पीठ,
कुलपति, भारतीय विद्यामन्दिर
बीकानेर (राजस्थान) ।

हम यह जानकर प्रसन्न एवं प्रभावित हैं कि भगवान् श्रीकृष्णका धर्म इतने वर्षों तक दबाये जानेके बाद भी पुनः जगमगा रहा है ।

एम. मैट. वी. जैक्स
हैमवर्ग, जर्मनी ।

मैंने इस क्षेत्रको अत्यन्त रुचिकर एवं सभी क्षेत्रोंके प्राणियोंकेलिये प्रेरणास्पद पाया ।

एन. आई. एम. क्यूइन आफ होंगकोंग
४२, कौन्डयूट रोड होंगकोंग ।

मैंने भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थानका दर्शन किया । वर्तमान कृष्ण-मन्दिर तथा निर्माणाधीन मन्दिरकी योजनासे अत्यन्त प्रभावित हुआ । मैं इसके श्रेष्ठतम् होनेकी कामना करता हूँ ।

जैनिस स्टीनर
१८२, विक्टोरिया रोड, बैलेव्यूहिल
न्यू २०२३, आस्ट्रेलिया ।

—०—

श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥

वर्ष ४ } मथुरा, नवंबर १९६८ { अङ्क ४

गोवर्द्धन धारण

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥

—इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णने खेल-खेलमें एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और जैसे छोटे-छोटे बालक बरसाती छत्तेके पुष्पको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही उन्होंने उस पर्वतको धारण कर लिया ।

अथाह भगवान् गोपान् हेऽम्ब तात व्रजौकसः ।
यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥

—इसके बाद भगवान्‌ने गोपोंसे कहा—'माताजी, पिताजी और ब्रजवासियो ! तुम लोग अपनी गौओं और सब सामग्रियोंके साथ इस पर्वतके गड्ढेमें आकर आरामसे बैठ जाओ ।

न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ।
वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥

—देखो तुम लोग ऐसी शंका न करना कि मेरे हाथसे यह पर्वत गिर पड़ेगा । तुम लोग तनिक भी मत डरो । इस आँधी-पानीके डरसे तुम्हें बचानेके लिए ही मैंने यह युक्ति रची है ।

[श्रीमद्भागवत—१० । २५ । १९-२०-२१]

●●●

"दीपावली ज्योतिका महान् पर्व है। क्या साधारण ज्योतिका पर्व? नहीं, उस अप्रतिम ज्योतिका महान् पर्व, जो अज्ञानके, दैन्यके और कालुष्यके तमके विनाशकेलिए युग युगोंसे भारतकी धरित्री पर मनाया जाता है। हमारे ऋषियों-पूर्वपुरुषोंकी यह देन हमारी संस्कृतिकेलिए वस्तुतः अपने नामके अनुरूप ही ज्योतिका एक महान् पर्व है।"

प्रज्वलित दीपोंकी सांस्कृतिक परम्परा

श्रीदेवधर शर्मा

प्रज्वलित दीपोंकी सांस्कृतिक परम्पराका परिचय हमें वैदिक कालसे ही मिलता है। वैदिक कालमें दीपावली पर्व 'दीपान्विता' कहलाता था। प्रारम्भमें श्रीपूजा होती थी। फिर लक्ष्मी-पूजन होने लगा। ऋषियोंने ऋग्वेदके परिशिष्टभागमें श्री-सूक्त और लक्ष्मी-सूक्तकी रचना की और लक्ष्मीकी पूजाके निमित्त ही की थी। कालक्रमानुसार इस पर्वमें परिवर्तन अवश्य हुए हैं, किन्तु मूल उद्देश्य ज्यों-का-त्यों बना रहा।

उत्तर वैदिक कालमें दीपोंकी जगमग ज्योतिके साथ लक्ष्मीका आह्वान और पूजन किया जाता था। इसी उत्तर वैदिक युगसे दीपावलीकी रातमें द्यूत-क्रीड़ाका समारम्भ हुआ। उस समयके ऋषियोंने बहेराके फलोंसे जुआ खेलकर अपनी दुष्प्रवृतियों और दुर्व्यसनोंके शमनका उपाय निकाला था।

हिन्दू-संस्कृतिके सन्देशवाहक ऋषिगण दूरदर्शी, सूक्ष्मदर्शी तथा मानव-स्वभावके पारखी होते थे। वह समझते थे कि मानव-स्वभाव सदा-सर्वत्र एक समान होता है। योग और भोग, वैराग्य और अनुराग, कामना और त्यागका द्वन्द हर व्यक्तिमें रहा करता

है। इसीलिये उन्होंने पर्वों, त्यौहारों, व्रतों, उत्सवोंकी परम्परा चलायी कि दीपावलीमें जुआ खेलकर, होलीमें उन्मत्त गान करके, दशहरामें शस्त्रास्त्रका संचालन करके अपने दुर्व्यसनों एवं दुष्प्रवृतियोंका दमन कर देंगे और फिर वर्ष भर सात्विक रीतिसे रहेंगे।

किन्तु विकासके साथ विकार भी वढ़ा करते हैं। दीपावलीका उद्देश्य द्यूत-व्यसन वन गया। वहेराके फलोंने पासोंका रूप ग्रहण कर लिया और दीपावलीके अलावा भी जव लोग जुआ खेलने लगे तव समाजके नियन्ताओंने 'अक्षैर्मादीव्यः' कहकर पासा खेलने का निषेध किया, रोक लगायी। किन्तु यह दुर्व्यसन रुक न सका और कालान्तरमें दीपावलीकी द्यूतक्रीड़ा भाग्य-परीक्षाके रूपमें होने लगी। फिर बढ़ते-बढ़ते व्यसन और व्यवसाय वन गयी।

दीपावली पर्वका मूल सांस्कृतिक उद्देश्य वरसातके वाद एकत्र कीटाणुओं और वायुमण्डलके विषाक्त वातावरणको नष्ट करना, शुद्ध करना और समाजके मनोविकारोंको दूरकर उसे तन-मनसे स्वस्थ वनाना है। इसीलिये इस अवसरपर घर-घर सफाई होती है, लिपाई-पुताई होती है। गृह-मन्दिरों, देवालयों, गोशालाओं, वापी-कूप-तड़ागों, खेतों, खलिहानोंमें, घी-तेलके दीपक जलाकर वातावरणको स्वच्छ-पवित्र वनाया जाता है। दीप-ज्योति जलाकर लक्ष्मी, विद्या और गणेशजीकी पूजा करके श्री, कीर्ति, विद्या, बुद्धि, विजय, विभूतिकी कामना की जाती है। दीप-शिखाको निमित्त वनाकर हृदयकी ज्योति जगानेकी साधना की जाती है। यह आध्यात्मिक साधनाकी परम्परा आजकल मन्त्र-यन्त्र सिद्ध करनेकी पद्धतिमें निहित है।

आर्य-संस्कृति राष्ट्र, समाज, परिवार और व्यक्तियोंमें ही नहीं, वल्कि धरतीके कण-कणमें समायी हुई है। इसीलिये हम आर्यजन जल, मिट्टी, पत्थर, नदी, पर्वत और वृक्षको देवी-देवता मानकर पूजते हैं। दीपावलीकी सांस्कृतिक परम्परा इन्हीं मान्यताओंको लेकर युग-युगसे चली आ रही है और यह सांस्कृतिक परम्परा समाजका एक अङ्ग बनकर अपना सामाजिक महत्व भी वैसा ही रखती है, जैसा कि सांस्कृतिक।

दीपावलीका मुख्य पर्व कार्तिककी अमावसके दिन मनाया जाता है। किन्तु दो दिन पहले तेरस और चौदस भी जलते हुये दीपोंकी सांस्कृतिक परम्पराके अभिन्न अङ्ग हैं। तेरसको धनतेरस कहा जाता है। इस दिन छोटी दीपावली मनायी जाती है। इस दिन भी दीपदान किया जाता है। किन्तु इन दोनों दिन अल्पमात्रामें दीप जलाये जाते हैं।

जलते हुए दीपोंकी त्रिदिवसीय परम्परा सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व रखती है। आर्यधर्मके धर्मशास्त्रों और पुराणोंमें इनका विशद उल्लेख पाया जाता है।

सनत्कुमार संहिताके अनुसार धनतेरससे ज्योति-पर्वका प्रारम्भ होता है और अमावसको असंख्य दीपोंकी ज्योतिमालाके साथ समाप्त होता है। इस दिन हलसे जुती हुई मिट्टीको दूधसे भिगोकर सेमल वृक्षकी डालीमें लगाया जाता है। फिर उसे तीन वार अपने शरीरमें छिड़ककर माथेपर कुंकुमका टीका लगाया जाता है। सायंकाल मठ, मन्दिर, वापी, कूप, तड़ाग, वाटिका, खेत, गोशाला, गजशाला, हयशाला, सर्वत्र घीके दीपक रक्खे जाते हैं। इसके वाद नये बर्तन खरीदे जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि धनतेरसके दिन खरीदे गये बर्तनोंमें लक्ष्मीजीका वास रहता है। साल भर तक भोजन-अन्नकी कमी नहीं रहती है।

चतुर्दशीका नाम नरक चतुर्दशी कैसे पड़ा और इस दिन दीप क्यों जलाये जाते हैं—इस सम्बन्धमें यह पौराणिक कथा है कि राजा हेमके एक तरुण पुत्रका विवाह हुआ। जिस दिन बहूको बिदा कराकर राजकुमार घर आया, उसी दिन उसका देहान्त हो गया। उसे लेकर यमदूत यमराजके पास गये और खिन्न मनसे उन्होंने निवेदन किया कि 'महाराज, इतने दिनोंसे हम लोगोंको कालग्रास वनाते आ रहे हैं। किन्तु इस राजकुमारकी मृत्युने हमें अत्यधिक विचलित कर दिया है। अव भविष्यमें हमसे मंगलमें अमंगल न होने पाये, ऐसा कोई उपाय करें।' यमराज वोले—'ठीक है। आजके दिन जो व्यक्ति तैलाभ्यंग पूर्वक स्नान और अपामार्ग तथा वरियारीसे प्रोक्षण कर स्नान करेगा, तीन अंजुली जलसे मुझे तर्पण करेगा और इसके पश्चात् शामको यमदीप जलायेगा—उसकी न तो अकाल मृत्यु होगी और न वह नरकवास करेगा।' तभीसे इस तिथिका नाम नरकचौदस पड़ा। इसदिन लोग शरीरमें तेल लगाते हैं, चिचिड़ा और वरियारी शिरपर रखकर स्नान करते हैं और फिर शामको दीपक जलाते हैं। इस कथाका जहाँ सांस्कृतिक महत्व है, वहीं इसका तात्पर्य स्वास्थ्य-विज्ञान एवं मनोविज्ञानकी दृष्टिसे शरीर, मन तथा मस्तिष्ककी आरोग्यता से भी है।

धनतेरससे लेकर अमावस तक--तीनों दिन दीप जलानेकी सांस्कृतिक परम्पराको प्रमाणित करनेवाली पुराणगत भिन्न-भिन्न कथायें हैं। एक कथाके अनुसार देवासुर-संग्राम में असुरोंसे पराजित देवता वन्दी वना लिये गये। उनके साथ लक्ष्मीजी भी वन्दिनी वनीं। देवलोक और मनुष्यलोक श्रीहीन हो गये। ब्रह्मा, शिव नारद घवड़ाकर भगवान् विष्णुके पास गये और उनसे लक्ष्मीजीको मुक्त करानेकी प्रार्थना की। तव भगवान् विष्णुने असुरों के राजा वलिको वाँधकर कार्तिककी अमावस्याके दिन लक्ष्मीजीको कारामुक्त किया। भूलोक और स्वर्गलोकमें सर्वत्र आनन्द छा गया। लक्ष्मीजीकी अगवानीकेलिये धरती और स्वर्गमें घर-घर दीप जलाये गये। रातभर जागकर लक्ष्मीजीकी पूजा और स्तुति की गयी। तवसे प्रतिवर्ष दीपावलीका ज्योति-पर्व मनाया जाने लगा।

यही कथातथ्य दूसरे प्रकारसे यह है कि देवलोकको विजय करनेकेलिए राजा

वलि यज्ञ कर रहा था। पूर्णाहुतिके दिन भगवान् विष्णुने वामन रूप धरकर उससे दक्षिणा माँगी। वलि दानशूर राजा था। पुरोहित द्वारा मना करनेपर भी वह याचक ब्राह्मण से दान मांगनेका अनुरोध करता रहा। वामन रूप भगवान्ने तीन पग पृथ्वीका दान मांगा। वलिने दे दिया।

भगवान्ने तेरससे अमावस तक तीन दिनोंमें तीन पगसे राजा वलिके राज्यकी सारी धरती नाप ली। पश्चात् उसकी भक्ति-भावनासे प्रसन्न होकर उन्होंने उससे वरदान मांगनेके लिये कहा। राजा वलि वोला—'देव, मुझे अपने लिये कुछ भी अभीष्ट नहीं है। यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे राज्यमें रहनेवाली प्रजाकेलिये यह वरदान दें कि जिन तीन दिनोंमें आपने मेरे राज्यकी भूमि नापी है, उन दिनों जो व्यक्ति दीपदान करेगा और चतुर्दशीको यमका तर्पण करेगा, उसे नरककी यातना न भोगनी पड़ेगी।'

भगवान्ने 'एवमस्तु' कहा और तभीसे तेरस, चौदस और अमावसको दीपदानकी परम्परा प्रारम्भ हुई।

एक अन्य पुराण-कथाके आधारपर यह अनुश्रुति है कि विजयादशमीके दिन लङ्का पर विजय प्राप्त करके भगवान् श्रीराम अमावस्याके दिन जब अयोध्या पधारे तब उनकी अगवानीमें अवधवासियोंने घर-घर दीप-ज्योति जलायी।

इन सब कथाओंका एक ही तात्पर्य है। वह यह कि दीपावली-पर्वके दिन जलते हुए दीपक आर्य हिन्दू जातिका अज्ञानान्धकार दूरकर ज्ञान-ज्योति प्राप्त करनेके प्रतीक हैं और उनके द्वारा हमें तन-मन, घर-द्वारको पवित्र एवं आरोग्यवान् बनाकर तथा लक्ष्मी की उपासना करके राष्ट्रको सशक्त—समृद्ध बनाना चाहिये।

इसी सार्वभौम राष्ट्रीय अभ्युत्थानका उद्देश्य रखकर दीपावलीकी सांझमें सर्वत्र बड़े धूम-धामसे दीपोंकी ज्योति जलायी जाती है। घरके बाहर-भीतरकी लिपाई, पुताई, सफाई की जाती है। घरके देवालयोंमें घीका अखण्ड दीपक जलाकर लक्ष्मी-गणेशका पूजन किया जाता है। धानके खील, बतासे, खोआ से बनी हुई मिठाईका भोग लगाया जाता है। रात भर जागरण किया जाता है और श्रीसूक्त तथा लक्ष्मीसूक्तका पाठ किया-कराया जाता है।

होलीकी तरह दीवाली भी ऐसा त्यौहार है, जिसे आर्यधर्मी हिन्दू एक समान मनाते हैं। वर्ण-व्यवस्थाका कोई बन्धन या भेदभाव नहीं रहता। राष्ट्रको श्री-सम्पन्न और शक्तिशाली बनानेकेलिए चारों वर्णके लोग एक समान आराधना करते हैं।

दीपावलीके जगमगाते हुए दीपोंकी सांस्कृतिक परम्परा एक ऐसी परम्परा है, जिससे राष्ट्र और समाजके वर्ष भरका भविष्य आँका जाता है।

दीपोंकी ज्योति-शिखा जब वन्दनवार बनकर धरती आकाशको आलोकित करती है, तब बच्चे उस जगमगाती-झिलमिलाती ज्योतिकी छायामें मिलजुलकर क्रीड़ाएँ करते हैं। उनकी क्रीड़ाओंमें ही वर्ष भरके शुभ-अशुभ भविष्यकी पहिचान की जाती है। फुलझड़ियाँ, पटाखे छुड़ाते हुए अथवा अन्य अग्नि-क्रीड़ाओंमें यदि तुरन्त चिनगारियाँ, ज्वालाएँ नहीं फूटती हैं, तो उस वर्ष दुर्भिक्ष या महामारीकी आशङ्का की जाती है। खेलते हुए बालक यदि आपसमें लड़ने लगें तो देशमें गृहयुद्ध या परराष्ट्रसे तनाव अथवा युद्ध होनेका अनुमान लगाया जाता है। कदाचित् किसी कारणवश यदि बच्चे रोने लगते हैं तो समझा जाता है कि इस वर्ज वर्षाका अभाव रहेगा और यदि बालक काठके घोड़ेपर चढ़कर खेल खेलते हैं, दिग्विजयका अभियान करते हैं तो यह समझा जाता है कि हमारा राष्ट्र किसी परराष्ट्रसे युद्ध होने पर विजय प्राप्त करेगा।

इसप्रकार दीपावलीकी जगमग-जगमग करती हुई ज्योति-शिखाका प्रकाश हमारे जातीय, राष्ट्रीय और अध्यात्म जीवनमें समाया हुआ है। हम राष्ट्रकी रक्षाकेलिए जाग्रत रहें और समस्त साधनोंसे स्वराज्यको सुरक्षित रखनेका प्रयत्न करते रहें—यह हमारे राष्ट्रकी आधारभूत संस्कृति है और इस सांस्कृतिक परम्पराका अविच्छिन्न प्रवाह युग-युग से प्रवाहित होता आ रहा है। इस प्रवाहका उद्गम स्रोत दीपावली पर्व है, जिसे ज्योति-पर्व और राष्ट्रीय जागरणका त्यौहार कहा जाता है।

राष्ट्रकी समृद्धि और सुरक्षाकी कामना रखकर श्री, विजय और विभूति प्राप्त करनेकेलिये राजलक्ष्मी और गणपतिका पूजन हिन्दू संस्कृतिका राष्ट्रधर्म है। हमारा राजकोष सदैव सम्पन्न रहे, हमारा गणपति-राष्ट्रपति राष्ट्रकी रक्षा और समृद्धिकेलिए सशक्त और जागरूक रहे तथा जलती हुई दीपमालाकी भाँति भारतीय जनताका हृदय विवेक, आस्थासे सम्पन्न रहे, जन-जागरणका घर-बाहर सर्वत्र विकास होता रहे—यही है जलते हुए दीपोंकी सांस्कृतिक परम्पराका मुख्य लक्ष्य। आइये, हम सब मिलकर भगवान्से प्रार्थना करें कि दीपावलीकी दीपशिखा हमारे समाज और राष्ट्रको ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को ज्योतित करे, जिससे कि अज्ञानान्धकारका निवारण हो, समस्त मानव-समाज सुखी एवं नीरोग हो जाय। सब एक-दूसरेकी मङ्गल-कामना करें और किसीको भी कोई क्लेश न हो।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

—आकाशवाणी, मथुराके सौजन्यसे

गीताके परिवेशमें जीवन और जगत्के रहस्योंका विवेकपूर्ण चित्र

"जीवन निगूढ़तम ग्रन्थियोंका जाल है । जीवनमें अखण्ड सुख और शान्ति प्राप्त करनेकेलिए यह आवश्यक है कि हम उन ग्रन्थियोंका भेदन करें—उनके रहस्योंको समझें । पर प्रश्न है कि यह किसप्रकार हो ? उत्तर है कि भगवान् श्रीकृष्णके उन उपदेशोंको ग्रहण करके, जो उन्होंने अर्जुनको माध्यम बना कर किये हैं ।"

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्

डा० श्रीराजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी
एम० ए०, पी० एच० डी० डी० लिट्

विरुद्धोंका सामञ्जस्य कर्मक्षेत्रका सौन्दर्य है । ऐकान्तिक साधना और लोकरञ्जन के समन्वय द्वारा ही धर्मका पूर्ण स्वरूप प्रकट होता है । श्रीकृष्णका जीवन इसी कर्म-सौन्दर्य द्वारा परिव्याप्त है । उनके जीवनमें हमको धर्मवृत्तिकी तत्परताके उग्र एवं प्रचण्ड तथा कोमल एवं मधुर दोनों ही रूप दिखाई देते हैं । दोनों ही रूपोंमें हमें उनकी आनन्द-कलाके विकासके दर्शन होते हैं ।

श्रीकृष्णका जीवन सुख, सौन्दर्य एवं उत्साहसे भरा हुआ जीवन है । वह जन्मभर अन्यायके दमनमें तत्पर रहे और अपने कर्त्तव्यका पालन करते रहे । इस प्रकार उनके जीवनमें उपभोग और प्रयत्न-दोनों ही पक्ष अपनी पूरी रमणीयताके साथ बराबर बने रहे ।

महाभारतमें हमें श्रीकृष्णका राजनीतिक जीवन अपने पूर्णमें प्रस्फुटित दिखाई देता है । कौरवसभामें पाँच गाँवोंकी चर्चा चलाकर वह अहिंसा एवं सद्भावनाका प्रति-

निधित्व करते हैं। परन्तु युद्धके समय अर्जुनको विषाद एवं मोह उत्पन्न होनेपर वह श्रीमद्भगवद्गीता जैसा उपदेश देकर अपने धीर, गम्भीर, शांत, वाक्पटु, दार्शनिक, तत्त्ववेत्ता, धर्मज्ञाता आदि अनेक रूपोंका परिचय देते हैं। अन्तमें स्वधर्म, क्षात्रधर्मके नाम पर अर्जुनको निष्काम भावसे युद्ध करनेकी प्रेरणा प्रदान करते हैं। इस प्रकार प्रकारान्तरसे वह यह निश्चित् रूपसे बता देते हैं कि शरीरके मरने-मारनेमें हिंसाका प्रश्न नहीं आता है। हिंसाका प्रश्न आता है उसके लक्ष्य पर विचार करने पर। युद्धके बहाने मनकी चंचलतापर विजय पाकर स्वधर्म पालनको सर्वश्रेष्ठ बताते हुए वह "मामेकं शरणं" में जानेकी बात कहकर अन्तमें भगवान्के पास लेजानेवाले कल्याणकारी मार्गको प्रकट कर देते हैं।

अर्जुनका रथ हाँकते-हाँकते वह भीष्मपितामहके ऊपर चक्रसुदर्शन लेकर दौड़ ही पड़ते हैं। उन्हें अस्त्र न छूनेकी अपनी प्रतिज्ञाके भी भङ्ग होनेका उतना डर नहीं था, जितना वह यह बतला देना आवश्यक समझते थे कि आवश्यकतासे अधिक सहनशीलता कायरता एवं निर्बलताकी द्योतिका है, शत्रुके बढ़तेहुए वेगको रोकनेकेलिए शक्तिका प्रयोग अनिवार्य है, बाँह गहेकी लाज रखनेके सम्मुख कोई भी त्याग महान् नहीं है। परन्तु जब भीष्मने दौड़कर कृष्णके चरण पकड़ लिए, तो वह शान्त हो गये। उन्हें तो केवल यह बताना अभीष्ट था कि प्रभुकी कृपाके बिना विजय असम्भव है। इस प्रकार जय और पराजय-दोनोंमें समान रहकर उन्होंने अर्जुनके माध्यमसे इस निरीह मानवताको सच्चे कर्मयोगी होनेका मार्ग दिखाया।

जगत्का उपादान कारण मूलप्रकृति है और ब्रह्म उसका निमित्त कारण है। मूलप्रकृति भी ब्रह्मकी ही सृष्टि है। ब्रह्मके मनमें उत्पन्न सृष्टि रचनाके ध्यान मात्र द्वारा मूलप्रकृतिके परमाणु व्यवस्थित होकर विभिन्न स्तरीय पदार्थों एवं जीवोंकी रचना करते हैं। सारांश यह है कि समस्त सृष्टि-प्रपंचका हेतु हमारा 'ध्यान' अथवा 'विचार' ही है। कहने को राज, मजदूर भवन बनाते हैं, परन्तु उस भवनका निर्माण होता है इंजीनियर द्वारा बनाये हुए मानचित्रके अनुसार। इंजीनियरके ध्यानमें भवनका जो रूप होता है, उसीके अनुसार भवनका निर्माण किया जाता है। इस प्रकार वास्तवमें मकान बनता है इंजीनियरकी इच्छानुसार और उस इच्छाको कार्यान्वित करते हैं छोटे इंजीनियर, ओवरसीयर, मिस्त्री, मजदूर इत्यादि। वृक्षका रूप निहित रहता है बीजके भीतर। उसीके अनुसार अंकुरित होकर वृक्ष पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होता है। उद्यानका माली तो केवल पानी देता है तथा उसकी सुरक्षाकी व्यवस्था करता है। स्पष्ट है कि भवन का वास्तविक निर्माण करता है इंजीनियर और वृक्षको रूप विशिष्ट देनेवाला है बीज। अब यदि मजदूर और माली नियामक अथवा कर्ता होनेका दम्भ करने लगें, तो इसका

क्या उपाय है ? भगवान् श्रीकृष्णने अपना विराट रूप दिखाकर अर्जुनको इसी तथ्यका ज्ञान कराया था। उनकी सर्वव्यापी चेतनामें विश्व-ब्रह्माण्डकी सम्पूर्ण रूप-रेखा-योजना निहित है। उसीके अनुसार विश्व-प्रपंचका समस्त क्रम चल रहा है, हम तो केवल उस महती योजनाको कार्यान्वित करनेमें सहायक मात्र हो सकते हैं। इस महती योजनाका आन्तरिक अथवा मूल हेतु है अखंड ब्रह्मकी इच्छा। आप और हम सब केवल वाह्य अथवा गौण हेतुके रूपमें उसको कार्यान्वित ही कर सकते हैं।

भगवान् कृष्णने अर्जुनको दिव्य दृष्टि प्रदान की और अपनी विभूति अथवा विश्व-व्यापी शुद्ध आत्म-चेतनामें निहित इस महती योजनाका दर्शन करा दिया। वह स्वरूप विस्मयकारी था। रामके पेटमें कागभुसुंडिने इसीका दर्शन किया था। संक्षेपमें उसका स्वरूप यह था—

जो नहिं देखा नहिं सुना, जो मनहूं न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउं, बरनि कवनि विधि जाइ॥

सब कुछ देखा—प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक जीवके अनेक-अनेक रूप देखे, परन्तु प्रभु की चेतना अखण्ड एवं एक रस ही बनी रही—

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु, अति विचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउं प्रभु, राम न देखेउं आन॥

सर्वव्यापी चेतनामें विकार होता भी क्यों ? जब सब कुछ उसी की इच्छानुसार घटित हो रहा है, तब वह सर्वथा निर्लिप्त क्यों न बनी रहे ?

प्रभुके इस विराट रूपको देखकर अर्जुन सहम गया, उसका समस्त अहङ्कार जाता रहा और उसका हीनत्व भाव उसे असह्य हो उठा—

दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।

तथा—दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास।

अतएव—तदेव मे दर्शयदेव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास।

विश्व-व्यापी चेतनाके संस्पर्शके अतिरिक्त दिव्य दृष्टि कुछ नहीं है। इसका संस्पर्श

प्राप्त होते ही इस अनादि और अनन्त महती योजनाका स्वरूप अर्जुनकी समझमें आगया था और वह कर्त्तापनका अभिमान त्यागकर पूरी निष्ठाके साथ कर्त्तव्य-पालनमें प्रवृत्त हो गया था।

उपर्युक्त विवेचनके सारांश रूप हमारे जीवनके दो लक्ष्य ठहरते हैं—प्रभुकी इच्छा के द्वारा निर्धारित इस महती योजनाका सम्यक् ज्ञान तथा उस योजनाको कार्यान्वित करनेकेलिए सम्यक् सामर्थ्यका सम्पादन। भगवान् श्रीकृष्णने अपने श्रीमुख द्वारा दोनों ही क्षेत्रोंमें हमारा मार्ग-दर्शन किया है। योजनाके ज्ञानकेलिए एक ही उपाय है :—

"सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"

तू विशुद्ध-चेतनाके प्रतीक मुझ सच्चिदानन्दकी शरणमें आ—अर्थात् आत्म-चेतना की संकीर्ण सीमाओंको पार करके विश्व-व्यापी चेतनाका संस्पर्श प्राप्त कर, अहङ्कार प्रेरित समस्त कर्म समाप्त हो जायेंगे और तू कर्मके वन्धनोंसे मुक्त हो जाएगा। चेतना-विकासके अनुरूप ही हमारी अनुभूति कार्य करती है। हमारी चेतनाका विकास जिस स्तरका होगा, उसी स्तरतक हमारी अनुभूति योजनाके स्वरूप-उद्घाटनमें समर्थ होगी। महती योजनाके स्वरूप-उद्घाटनकेलिए महती चेतना अपेक्षित है। जब तक सान्तका पर्यवसान-अनन्तमें नहीं हो जाता है, तब तक हमारी चेतना और तज्जन्य अनुभूतिकी सीमाएं संकुचित एवं संकीर्ण ही बनी रहेंगी। इसलिए शुद्ध चेतना स्वरूप कृष्णकी उपासना ही एक मात्र अवलम्बन है।

आत्म-चेतनाके अनुरूप ही बुद्धि कार्य करती है और वही हमारे कर्त्तव्यका निर्धारण करती है। चेतना-विकासके स्तर विशेषके अनुरूप निर्धारित कर्त्तव्यको ही भगवान् ने स्वधर्म एवं स्वभाव कहा है।

स्वधर्मके सम्यक् निर्धारण एवं तदनुसार सम्यक् आचरणकी सामर्थ्य—सम्पादन के लिए साधना अपेक्षित है। इस साधनाके स्वर्ण सोपानोंका निरूपण भगवान्ने भक्तोंके हितार्थ विस्तारके साथ किया है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।

स्वधर्म पालनकेलिए अपेक्षित योग्यता आवश्यक है—

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, परिग्रहम्।
विमुच्य, निर्ममः शान्तः ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

विश्व प्रपंचकी समस्त घटनाएं और योजनाएं—पूर्वनिर्धारित महती योजनाके अंग मात्र हैं। अतः हमें चाहिए कि अपनी सामर्थ्यके अनुसार पूरी निष्ठाके साथ उसको

कार्यान्वित करनेमें अपना योग प्रदान करें। इसीको लक्ष्य करके श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि हे अर्जुन, मेरे द्वारा निर्धारित इस योजनामें तू वाह्य निमित्त कारण बनजा—

मयेवंते निहताः पूर्वमेव
निमित्त मात्रं भव सव्यसाचिन् ।

"अहं त्वांसर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः" "सूरदास सुन भक्त विरोधी चक्र सुदर्शन जारौं" आदि वाक्यांशों द्वारा प्रभुने भक्तको बल एवं आश्वासन प्रदान किया है। यही उनके जीवनका कर्म-सौन्दर्य है। इस कर्म-सौन्दर्यके साक्षात्कारकी कुंजी इन शब्दों में हैं—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूति ध्रुवा नीति मतिर्मम ।।

अर्थात् जहाँ विशुद्ध चेतना स्वरूप श्रीकृष्णके हाथमें जीवनका संचालन सूत्र हो और अर्जुन सदृश स्वधर्म पालक धीर, वीर, संयमी, साहसी और निष्काम पुरुष उसके अनुगत हों; वहाँ श्री, विजय, विभूति और ध्रुवनीति होती है।

हम अपने कर्त्तव्यको निर्धारित करके पूरी निष्ठाके साथ उसमें लग जाएँ और काम, क्रोध, लोभ, मदादि शत्रुओंको जीतकर दया, क्षमा, धृति रूपी धन-धान्यसे सम्पन्न इस चेतना-विकासका सुखोपभोग करें।

तुम स्वयं आश्चर्यजनक पदार्थ हो

एक विदेशी वैज्ञानिक विश्वके नौ आश्चर्यजनक कृतियोंका सूक्ष्म निरीक्षणकी दृष्टि से परिभ्रमण करते हुए ताजमहल व एलोराका कैलाशमंदिर देखने भारत आये। जब यह समाचार उनके भारतस्थित दार्शनिक मित्रको मालूम हुआ तब उन्होंने उनको एक पत्र द्वारा सूचित किया कि मेरे पास भी विश्वका एक महान् आश्चर्यजनक पदार्थ विद्यमान है। वैज्ञानिकजीने अपने आध्यात्मिक मित्रके पास आकर उस पदार्थको देखनेकी उत्कंठा प्रदर्शित की।

अध्यात्मवादी मित्रने कहा, "मित्र—गारा, मिट्टी, ईंट, पत्थरों द्वारा निर्मित पदार्थों को क्या देखने आये हो—जरा अपने आपका शरीर-मंदिर रूपी महलका निरीक्षण तो करके देखो, यह किन-किन पदार्थों द्वारा बना है और इसमें किस तरह जड़ और चैतन्यका समावेश किया गया है? क्या सचमुच तुम स्वयं ही एक अखिल ब्रह्मांडके आश्चर्यजनक पदार्थ नहीं हो?

—रामचन्द्र राव

श्रीकृष्ण भगवान्के क्रान्तिपूर्ण जीवनका एक चित्र

"भगवान् श्रीकृष्णका अवतार जन-जीवनमें महा क्रान्तिके लिए हुआ था। उन्होंने जो भी चरण उठाया, उसमें हिंसाके, असत्यके, पापके, तापके, अनाचारके, अधर्माचारके विनाशकेलिए उद्घोष था--प्रलयंकरी विद्युतकी गति थी। धर्म संस्थापनार्थ वे निरन्तर अनैतिक शक्तियों पर प्रहार करते रहे। अनैतिक शक्तियों पर प्रहार करना--उन्हें मिटाना ही श्रीकृष्णका धर्म-तत्व था।"

श्रीकृष्णका धर्म-तत्व

श्रीप्रभुदयाल मीतल

जिस युगमें श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव हुआ था, उस समय वैदिक धर्मका परवर्ती रूप प्रचलित था। तब आर्योंका प्रधान उपास्य देव इन्द्र था, जिसे सन्तुष्ट करनेकेलिए विविध प्रकारके यज्ञ किये जाते थे। श्रीकृष्णने एक ऐसी धार्मिक क्रान्तिका आयोजन किया, जिसने वैदिक धर्मके तत्कालीन रूपमें बड़ा परिवर्तन कर दिया था। उन्होंने अपने बाल्य कालमें ही इन्द्रकी अवहेलना कर उसके निमित्त किये जानेवाले यज्ञके स्थानपर गोवर्द्धन-पूजा प्रचलित की थी। इस प्रकार उन्होंने इन्द्र सम्बन्धी यज्ञोंके विरोधमें गो-पालन और गो-संवर्धनरूपी पशु-रक्षाका प्रचार किया था। श्रीकृष्णकी जीवन घटनाओं और कृष्ण कालीन धर्मका सबसे प्राचीन स्रोत महाभारत है, किन्तु उसमें उक्त महत्वपूर्ण घटनाका उल्लेख नहीं है। कारण यह है, उसमें श्रीकृष्णके बाल्यजीवनकी अपेक्षा उनके उत्तर जीवनकी घटनाएं ही वर्णित हैं। किन्तु महाभारतके परिशिष्ट हरिवंशमें तथा विष्णु पुराणादि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थोंमें इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

कृष्ण-कालमें वैदिक यज्ञ विधान इतना विशद, जटिल और अर्थसाध्य हो गया था कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी यज्ञोंको सरलतपूर्वक नहीं कर पाते थे। महाभारत

से ज्ञात होता है, जब पांडवोंने राजसूय यज्ञ करनेका विचार किया, तब उसकेलिए आवश्यक धनकी व्यवस्था करनेमें उन्हें बड़ी कठिनाई हुई थी। श्रीकृष्णने यज्ञोंके उस आडम्बरको कम करने और उनमें की जानेवाली अर्थ-दुरुपयोगिताको रोकनेकेलिए उनके रूपमें ही परिवर्तन करनेका प्रचार किया था। उन्होंने यज्ञकी नयी परिभाषा करते हुए बतलाया कि सर्वोत्तम यज्ञ वह है, जिससे प्राणियोंकी रक्षा हो और जिससे परोपकार किया जा सके। यज्ञकी वास्तविक दक्षिणा धन-सम्पत्ति नहीं है, बल्कि तप, दान, अहिंसा और सत्य है। श्रीकृष्णको उस मन्तव्यकी प्रेरणा अपने गुरु आंगिरस (महर्षि अंगिराके पुत्र) धीर ऋषिसे प्राप्त हुई थी। आंगिरस धीरका उल्लेख ऋग्वेदके 'कौषीतकि ब्राह्मण', कृष्ण यजुर्वेदकी शाखा 'काठक संहिता' और 'छांदोग्य उपनिषद्' में हुआ है। 'छांदोग्य उपनिषद्' में आंगिरस धीर द्वारा उनके शिष्य 'देवकीपुत्र' को उपदेश दिये जानेका कथन है, जिसमें अहिंसा धर्मकी व्याख्या की गई है। वह 'देवकीपुत्र' वृष्णिवंशीय श्रीकृष्ण ही थे। 'छांदोग्य उपनिषद्' में लिखा गया है—धीर आंगिरससे शिक्षा प्राप्तकर देवकीपुत्र (कृष्ण) 'अपिपास' हो गए—अर्थात् उन्हें कुछ और जाननेकी तृषा नहीं रही थी। धीर द्वारा प्राप्त ज्ञानको श्रीकृष्णने अपने सखा अर्जुनको बतलाया था, जिसका व्यवस्थित रूप भगवत् गीतामें मिलता है।

कृष्ण कालमें यज्ञप्रधान कर्म (प्रवृत्ति) मार्ग और चिंतनप्रधान ज्ञान (निवृत्ति) मार्ग दो सामानांतर धाराएँ पूरे वेगसे प्रवाहित हो रही थीं। श्रीकृष्णने गीताके उपदेश द्वारा उनका सङ्गम करते हुए बतलाया कि मनुष्यको कर्म अवश्य करना चाहिए, क्योंकि कर्म करना उसका सहज स्वाभाविक धर्म है। वह चाहे तब भी बिना कर्म किए क्षण भर भी नहीं रह सकता है, किन्तु मनुष्य जो कर्म करे, उसे लोक-संग्रहकेलिए कर्तव्य मानकर करे और साथ ही साथ उसे अनासक्त भावसे अर्थात् वासनारहित होकर करे। वासनारहित निष्काम कर्म ही 'यज्ञ' है और वह आध्यात्मिक साधनमें बाधक नहीं होता। इस बातको गीतामें कई बार कई प्रकारसे कहा गया है।

श्रीकृष्णका कथन है सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजयको समान समझकर प्रत्येक व्यक्तिको अपना कर्तव्य कर्म करते रहना चाहिए। सिद्धि-असिद्धिमें समान बुद्धि रख कर प्रत्येक व्यक्तिको अनासक्त भावसे ही कर्म करना उचित है। कर्मके फलकी चाह न कर प्रत्येक मानवको उसे अपना कर्त्तव्य समझ कर करना चाहिए। वह जो कुछ भी कर्म करे, उसे भगवान्के अर्पण कर दे। इस प्रकार कैसा भी कर्म किया जाय, उसके करनेवालेको कोई पाप नहीं होगा। उन्होंने कहा है, निष्काम कर्म करना कोई कठिन बात नहीं है, उसे कोई भी श्रद्धालु व्यक्ति सुगमतासे कर सकता है। प्रत्येक मनुष्यको अपना निजी कर्म करना ही उचित है, चाहे वह अधिक लाभकारी न दीखता हो। दूसरोंके लाभप्रद दीखनेवाले कर्मकी अपेक्षा अपना निजी कर्म ही अन्ततः उसके लिए श्रेयस्कर

होगा। श्रीकृष्णके धर्मका महत्व इसलिए अधिक माना गया कि उसमें कर्म, ज्ञान और भक्तिका अद्‌भुत समन्वय कर उसे सामाजिक जीवनके अनुकूल बना दिया गया है। कृष्णकालीन धर्मका प्रधान आकर ग्रन्थ महाभारत है, जिसका एक अंश भगवत् गीता है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता श्रीकृष्णके धर्म-तत्वका अक्षय कोश है। इसमें वर्णित धर्म तत्वको उपनिषदोंका सार, ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र कहा गया है। इसीलिए गीताके प्रत्येक अध्यायकी पुष्पिकामें 'श्रीमद्‌भगवत्‌गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे' लिखा मिलता है। गीताके माहात्म्यमें भी बतलाया गया है, श्रीकृष्णरूप ग्वालेने उपनिषद् रूपी गायोंका दोहन कर उनके दुग्धरूप गीता-ज्ञानको अर्जुन रूप बछड़ेको पिलाया था। उस महान् ज्ञानामृतसे अन्य सुधी जन भी तृप्त हो सकते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णके धर्म तत्वको श्रीमद्‌भगवत् गीताने सबके लिए सुलभ कर दिया है।

विश्वास

इस अनजानी दुनियां में प्रिय !
पाया मैंने प्यार तुम्हारा।

सोच रहा था बीती बातें,
निष्ठुर जग की तीखी घातें,

किधर जाऊँ ? अपनाऊँ किसको ?
खोज रहा था सुखद सहारा,
इस अनजानी दुनियां में प्रिय !
पाया मैंने प्यार तुम्हारा।

मेरे प्राणों में थी हलचल,
मेरा मन था प्रतिपल चंचल,

मैं जब हार चुका था पथपर—
मुझको नव बल मिला तुम्हारा।
इस अनजानी दुनियां में प्रिय !
पाया मैंने प्यार तुम्हारा।

ब्रजबाल

●●●

गीताकी समन्वयवादी विशिष्टताका एक चित्र

"लौकिक जीवनकी सिद्धि और पारलौकिक जीवन में उच्चतम प्रवृत्ति-दोनोंके समन्वयसे ही वास्तविक सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त हो सकता है। पर यह समन्वय किस प्रकार हो—गीताने इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नका ही तो समाधान प्रस्तुत किया है। इसीलिए गीता हिन्दूधर्मानुयायियोंमें ही नहीं, इतर धर्मावलम्बियोंमें भी पूजित है।"

महान् समन्वयवादी ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता

डा० श्रीजयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय संस्कृतिका महान् ग्रन्थ है। इसमें जिस तत्वज्ञानका विवेचन हुआ है, वह मनुष्य मात्रकेलिए है, उसे सम्प्रदायकी सीमामें बाँधना अनुचित कार्य होगा। गीताके तत्वज्ञानको कर्मयोग, ज्ञानयोग या भक्तियोग—इन तीनोंमें से किसी एक योगसे संयुक्त करना भी उचित नहीं, क्योंकि गीतामें तो समन्वय दर्शन है। समन्वयात्मक दृष्टि भारतीय संस्कृतिकी महान् एवं प्रमुख विशेषता है। अनेकतामें एकता का दर्शन भारतीय दार्शनिक विचारधाराका मूलमन्त्र है और गीता भारतीय दार्शनिक विचारधाराका एक उत्कृष्ट काव्यात्मक ग्रन्थ है। इसकी सरसताको देखकर इसकी शैलीको 'कान्तासम्मितउपदेशतयोयुजे' अर्थात् काव्य शैली कह सकते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता महर्षि व्यास विरचित विश्वके विशालतम 'महाभारत' के ब्रह्मपर्वका अंश है। इसमें वेद और उपनिषदोंके सिद्धान्तोंकी सरस, सुबोध एवं प्रसाद गुणमय व्याख्या है। इसकी समन्वयात्मक दृष्टिका चमत्कार तो उस युगकी उपनिषदोंकी उच्चकोटिकी आध्यात्मिक धारा और चार्वाक्की 'यावद्जीवेतसुखं जीवेत्' की भोगवादी

धाराके टकरावको दूर करनेमें निहित है । उपनिषदोंकी आध्यात्मिक धारा इतनी उच्चकोटिकी एवं कठोर जीवनचर्याका निरूपण करती थी कि साधारणजनमें उसके प्रति एक विरोधकी भावना, प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई । यह प्रतिक्रिया चार्वाक्के लोकायत मतमें प्रकट हुई । इनका प्रमुख सिद्धान्त था जब तक जियो सुखसे जियो, घी पियो चाहे ऋण लेकर पीना पड़े । ये लोग अध्यात्ममें, मुक्तिमें, परलोकमें विश्वास नहीं करते थे । इसलिए ये नास्तिक कहलाए । दूसरी ओर औपनिषिदिक विचारधाराका प्रतिनिधित्व करनेवाले आस्तिक थे, जिनके षड़दर्शन दार्शनिक तत्वोंको और भी जटिलरूपमें प्रस्तुत कर रहे थे । ऐसे टकरावके युगमें गीताका प्रणयन हुआ । गीताने इस टकरावका—उस युगके मानव का—जिसका प्रतिनिधि अर्जुन है—समाधान किया । क्या करें, क्या न करें—कर्ममार्ग अच्छा है या भक्तिमार्ग या ज्ञानमार्ग ! अर्जुनके मनमें इन तीनों मार्गोंका संघर्ष था । वह एकदम विषादमें डूब गया । उसके हृदयकी कोमलता का अनुमान गीताके प्रथम अध्याय के उसके इन शब्दोंसे लगाया जा सकता है—"हे श्रीकृष्ण मैं युद्ध नहीं करूँगा, युद्ध किसके विरुद्ध—अपने ही भाई बान्धव, मातुल, श्वसुर, गुरु, पितामह, साले आदिके विरुद्ध । नहीं माधव, मैं युद्ध नहीं करूँगा । यह तो थोड़ी सी भूमिका प्रश्न है, यदि तीनों लोकोंका राज्य मिलता हो, तव भी मैं अपने वन्धु-बान्धवजनके विरुद्ध युद्धमें प्रवृत नहीं हूँगा ।" अर्जुनके इस विषादयोगकी भूमिका पर ही तो गीताकी अमृतमयी वाणी प्रकट हुई है । हम इस विषादयोगको विना समझे गीताको कैसे समझ सकते हैं ? अर्जुनका व्यक्तित्व और उसकी मनोदशाका जैसा चित्रण गीताके प्रथम अध्यायमें है—उसने तो करुण रसकी धारा वहा दी है, किन्तु भगवान् कृष्ण तो उसके सारथी हैं—वे उत्साह नामक स्थायी भावसे भरे हुए वीररसकी मूर्ति वने हुए हैं । गीताके प्रथम अध्यायमें करुण और वीररस की धाराएँ हैं तो अन्य सत्रह अध्यायोंमें शान्तरसकी धारा है, जो समस्त संकल्प-विकल्पों को शान्तकर आत्मानुभूतिमें लीन करती है । भगवान् श्रीकृष्णने सिद्धान्तरूपमें भी इस बातका कथन किया है कि आत्मा ही अपना उद्धार करनेमें समर्थ है, इसका उद्धार परसे नहीं होगा—स्व में लीन हो—स्वानुभूतिमय वन—अनुभव कर—पर पदार्थमें—धर्ममें लीन मत हो—यह तो परधर्म है—आत्माका धर्म तो ज्ञान है—आत्मा ज्ञानस्वरूप है—ज्ञानमें लीन हो जा, क्योंकि यह आत्मा ही तो अपना मित्र है और इसीको अपना शत्रु वना सकते हैं ।"

कहने का तात्पर्य यह कि गीतामें उस युगके आस्तिक और नास्तिक दर्शनोंका समन्वय है, किसीका खण्डन या मण्डन नहीं है । जीवनके लिए, व्यावहारिक जीवनकेलिए, नित्यप्रतिके जीवनकेलिए और साथ ही आध्यात्मिक साधनाके लिए कौन सा मार्ग अपनाएँ—इसका कान्तासम्मित उपदेशके रूपमें सरस समाधान गीतामें किया गया है । गीता एक महान् समन्वयात्मक ग्रन्थ है । उसमें वेद, उपनिषद्, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, योग, मीमांसा सभी दर्शनोंके तत्व लिए हैं और उनका समन्वयात्मक विवेचन किया है ।

तभी तो कुछ विद्वान उसे कर्मयोगका महान् प्रेरक ग्रन्थ मानते हैं, दूसरे उसे भक्तियोग की ज्ञानयोग पर विजय, सगुणकी निर्गुण पर विजय और तीसरे उसे शुद्ध ज्ञानयोगका उदात्त विश्लेषण कहते हैं। गीतामें ज्ञान, भक्ति और कर्मकी त्रिवेणी-धाराएँ मिलकर पुनीत गङ्गाका रूपधारण कर गई हैं और यह पावन गीता-गङ्गा संसारके सभी मनुष्यों एवं राष्ट्रोंकेलिए -जन जनके मानसकी विशुद्धिकेलिए मननीय, चिंतनीय एवं आचरणीय ग्रन्थ है। यह तत्व ज्ञान सर्वव्यापी है तथा सभी देश, काल, वर्ण, जाति, परिस्थिति व राष्ट्र के वन्धनसे मुक्त है। गीताने इहलोक और परलोक-दोनोंको संभालनेवाला अद्भुत पन्थ वताया है। वर्तमान युगमें और जव तक भारतीय संस्कृति रहेगी तथा जव तक भारतीय संस्कृतिमें आध्यात्मिक दर्शनको, मुक्तिको महत्व दिया जाता रहेगा, तव तक गीताका तत्वज्ञान मानवसमाजकेलिए आलोकस्तम्भका काम करता रहेगा।

भगवान् विष्णुका ध्यान

वह स्वरूप सर्वत्र और महान् है। उसमें प्रकाश है। प्रकाशमें—भगवान्का विग्रह है। वड़ी मधुर मूर्ति है, माधुरी मूर्ति कहते हैं। नीला स्वरुप है, यह महान् प्रकाश होनेसे सफ़ेद दीखता है। प्रभुमें एक प्रकारकी नील आभा चमकती है। वह बहुत ही कम दीखती है। जैसे आकाशसे सूर्यके प्रकाशमें नीलिमा दीखती है, उससे भी कम दीखता है। वह रोशनी नेत्रोंको तृप्त करनेवाली है। चन्द्रमाके दर्शनसे लाखों करोड़ों गुणा अधिक तृप्त करती है। ऐसा अलौकिक स्वरूप है, ऐसी आकर्षण शक्ति है कि कोई उसे छोड़ ही नहीं सकता। एक क्षणके लिये भी।

भगवान्के चरण वहुत कोमल हैं। निचले भागमें अंकुश आदिके चिह्न हैं। दो फुटकी दूरी पर प्रभु खड़े हैं। नाखून चन्द्रमाके टुकड़ोंकी तरह चमक रहे हैं। नखोंकी ज्योति नेत्रोंमें अलौकिक शान्ति पहुँचाती है। मनमें ऐसा आता है कि उन्हें ही देखता रहूँ। ऐसे ही गोड़े और जांघ हैं, रेशमी पीला वस्त्र विजली सा चमक रहा है। भगवान् तागड़ी पहने हैं। कमर पतली, नाभि गम्भीर है। जैसे कमल होता है। चार भुजाएँ हैं, दो ऊपर और दो नीचे। नीचेकी भुजामें गदा-पद्म हैं, ऊपर शंख चक्र है। कमलकी डंठी पकड़ रक्खी है, जिसमें ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं। शंखका नाम पांचजन्य है। सुदर्शन चक्र है, वह सूर्यके चक्र-सा दीखता है। चारों तरफ धार है और किनारे निकले हुये हैं। शंख दूधकी तरह सफ़ेद चमकीला है। क्रमशः—

[ब्रह्मलीन प० पू० श्रीसेठ जयदयालगोयन्दका

● ● ●

"लौकिक सौन्दर्य का चित्र अनेक कवियोंने चित्रित किया है, पर अमर तो वे ही कवि हो सके हैं, जिनकी दृष्टि भगवान्के अक्षय सौन्दर्यकी ओर आकृष्ट हो सकी है। भगवान्के अक्षय सौन्दर्य-सरोवरमें, चाहे वह निराकारका हो, चाहे साकार का—मज्जन करना ही जीवका परम लक्ष्य है। जो कवि जीवकेलिए वह सुलभ करता है, वह वन्द्य ही नहीं, अति वन्द्य है।"

नख-शिख श्रीकृष्णका आँखें कवि ग्वालकी

श्रीभगवानसहाय पचौरी

भारतीय संस्कृति धर्मप्राणा रही है। भारतीय साहित्य पग-पग पर धर्मका ऋणी रहा है। हिन्दीका कदाचित् ही ऐसा कोई कवि होगा, जिसने संस्कृतिके इस पक्ष पर लेखनी न उठाई हो। अवतारवाद साहित्यका चिरन्तन प्रतिपाद्य तत्त्व है। इसमें श्रीकृष्ण को पूर्णावतारके रूपमें अर्चना और उपासना सदैव ही मिली है। इसका कारण यह है कि उनमें ऐश्वर्य और माधुर्य-दोनोंका अपूर्व समन्वय है। यह और किस अवतारमें है? श्रीकृष्ण एक ओर जहाँ लोकपालक, लोकरञ्जक महातत्त्वके रूपमें अर्चित और वन्दित हैं, दूसरी ओर वे मानवरूपमें मानवताके प्रहरी, राजनायक और योद्धा हैं। वे अयुत-अयुत जन-मानसके आराध्य हैं। वे पुत्र, पिता, सखा, बालक, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, शत्रु-मित्र सभी कुछ एक साथ हैं। एक ओर वे देवकी-गर्भ संभूत यशोदा-नन्दके बारे लाल हैं, तो दूसरी ओर महाभारतके कर्त्ता-धर्त्ता और गीताके उपदेष्टा भी हैं। उनका ऐश्वर्य-समन्वित मधुर स्वरूप भारतीय जन-मनको अत्यन्त प्रिय रहा है। यही कारण है कि भारतीय साहित्य

में उनका यही स्वरूप आद्योपान्त अवतरित हुआ है। संस्कृत साहित्यको यदि हम छोड़ भी दें, तब भी हिन्दी आदि भारतीय भाषाओंमें जितना श्रीकृष्ण पर लिखा गया है, उतना और किसी अवतार पर नहीं। हिन्दीके भक्तिकालके सूरादि सिद्ध कवियोंने मधुर रसकी ऐसी मन्दाकिनी बहाई कि भारतीय संस्कृति धन्य हो उठी। इससे आगे रीतिकाल भक्ति के मर्म तक अवगाहन करनेवाले सूर आदि भक्त कवि तो न दे सका, परन्तु भक्तिकी यह सुरसरिता अप्रतिहत रूपसे प्रवाहित होती रही। यहाँ कृष्ण भले ही सामान्य नायक के रूपमें सर्वत्र चित्रित होते रहे, परन्तु उनका आराध्य रूप भी निरपेक्ष भावसे वर्णित होता रहा। कृष्णके बाल और युवा स्वरूपोंमें कवियोंके रसिक मनोंने ऐश्वर्य और माधुर्य के सुखद दर्शन किये। नखशिख वर्णन रीतिके कवियोंकी एक विशेप प्रवृति थी। श्रीकृष्ण पर अनगिन नखशिख रचे गये। रीतिके अन्तिम सर्वश्रेष्ठ आचार्य महाकवि ग्वाल श्रीकृष्ण के परम भक्त थे। उनका झुकाव निम्बार्क मतकी ओर भी था। इस नाते भी उन्होंने कृष्णको अपना वर्ण्य विषय बनाया। ग्वालका कृष्णाष्टक और 'श्रीकृष्ण जू को नखशिख' प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। नखशिखमें परम्परानुसार श्रीकृष्णके नखसे लेकर शिखा तकके वर्णनमें लिखे गये ६६ उत्कृष्ट कवित्त संग्रहीत हैं।

देवताओंके शरीरांगोंकी शोभाका वर्णन करनेवाले कवि अपनी स्तुतियोंको उनके नख-द्युतिसे आरम्भ करते हैं। कहीं-कहीं इस नियमका अपवाद भी मिलता है। परन्तु ग्वालने भक्ति-परम्परामें अनुशासित रहकर श्रीकृष्णके नखसे लेकर शिखा तककी छवि का अङ्कन अपनी अलङ्कार-प्रधान भाषामें किया है। नखशिख वर्णनके कवित्त क्रमानुसार इस प्रकार हैं:—चरण, नख, चरण-भूषण, जंघ, नितम्व, लंक, काछनी, लंक भूषण, नाभि, त्रिवली, रोमराजि, उदर, हृदय, भृगुलता, वक्षःस्थल चिह्न, वनमाल, पाणि, लकुट, बाँसुरी, भुजा, कण्ठ, कण्ठभूषण, पीठ, चोटी, चिबुक, अधर, दशन, रसना, मुख सुवास, हास्य, नासिका, कपोल, कर्ण, कर्णभूषण, नेत्र, चितवन, भृकुटी, भाल, खौरि, श्रीमुख, केश, मोरमुकुट, गति, पीतपट, सम्पूर्ण रूप वर्णन। कविने अक्रम दोप नहीं आने दिया, जैसा कि अन्य कई कवियोंमें दिखाई देता है। ग्रन्थमें पहले दस छन्द मङ्गलाचरण, आत्म परिचय आदिको समर्पित हैं। मङ्गलाचरणका कवित्त श्लिष्ट है, जिसमें राधा और सरस्वती की एकत्र स्तुति की गई है। यह लिखना आवश्यक भी था, क्योंकि पूरे ग्रन्थमें ही कवि को श्रीकृष्ण-स्तुति करनी है तव आराध्या राधा और शारदाकी वन्दना क्यों न की जाय? राधा जगदीश्वरी जो हैं। कृष्णको भी तो उनका अनुशासन मानना पड़ा है!

श्रीकृष्ण भगवान्‌के गुणोंका पार कौन कवि पा सका है? कविने भक्तोंकी परम्परा में अपना दैन्य, अपनी अशक्यता इन शब्दोंमें चित्रितकी है—

गुन सागर महाराज के, गावत मिलै न पार।
सो छवि कैसे कहि सकै, अल्प बुद्धि व्यवहार॥

लघु मति तूंबी क्यों करैं, गुन छवि सागर पूर।
चढ़ि पिपीलिका पीठि पै, क्यों पहुँचै मग दूर।।

थोड़ी बुधि कवि ग्वालकी, गुन हरिके सुअनन्त।
चित संकित अति होत है, किमि करियै वरनंत।।

श्रीगुरु सुकवि समूहकी, चरनकृपा धरि सीस।
वरनत कछु अब ग्वाल कवि, पंथ पुराने दीस।।

ग्वालका वर्णन भावपरक कम और वस्तुपरक अधिक है। यह प्रवृति पूरे रीति साहित्य की ही दुर्बलता है, ग्वालका इसमें अधिक दोष नहीं। नखशिख वर्णनके इस प्रसंगमें ग्वाल अपनी विशिष्ट भाषा, वर्णन शैली, छन्द योजना, शब्द योजना और आलंकारिता को भूल नहीं पाये। वे उत्प्रेक्षाके धनी तो हैं ही, कल्पनाकी ऊँचीसे ऊँची उड़ानें भी उन्होंने भरी हैं। इस दृष्टिसे उनका छन्द हजारों छन्दोंमें भी पहचाना जा सकता है। एक कवित्त श्रीकृष्णके चरणोंका है। वे चरण अशरण शरण, आनन्दके कर्त्ता और दुख द्वन्दोंके हर्त्ता हैं। देखिये—

कोहरमें बिम्बमें बधूकनमें विद्रुममें, जावक जपामें बट किसलय पसन्द के।
लालमें गुलालमें गहर गुललालनमें, लाली गुन एकसे न तूल है सुछन्द के।
ग्वाल कवि ललित लुनाईकी मलाई जैसी, तैसी है न कंज बीच और गुलाब फंद के।
नन्दके करन दुख द्वन्दके दरन धन, असरन सरन चरन नंदनन्द के।।

ललित लुनाईकी भी मलाई जैसी छवि श्रीकृष्णको छोड़कर और किन चरणोंकी होगी? कैसा मधुर स्वर है! अब चरणोंका ऐश्वर्यरूप देखिये:—

मुनिजन मनके अधारके अगारगुरु, कालीनाग सीसके सिंगार चारु साजके।
वेद औ पुरान सास्त्र तत्वनको तत्वतेज, सत्त्व कौ प्रभुत्व तत्व मुकति समाजके।।
ग्वालकवि कमल कुलिस धुज अंकुससे, चिन्हित विचित्ररूप दस रैंनिराजके।
सोभाके जहाज राजलोकनके ताज, राज, ऐसे पद राजैं ब्रजराज महाराजके।।

ब्रजराजके अंग प्रत्यंगकी शोभा वर्णन करते समय कविकी मति विभ्रममें पड़ जाती है। वर्ण्य कोई सामान्य पुरुष नहीं, साक्षात् भगवान् हैं, अतः कवि अनेक उत्प्रेक्षाओं का आधार खोजता दिखाई पड़ता है। नूपुर वर्णन ऐसा ही एक मधुर प्रसंग है—

कैधौं मंजुमुखाके मण्डन बनाये विधि, कैधौं कल कुण्डल अनूप सुषमाके हैं।
कैधौं जगमोहनके मन्त्रके अधार पूरे, कैधौं मृदु धुनिके वपुष छवि छाके हैं।

ग्वालकवि द्वार ही ते आगम करैया किधौं, मातहिय कमल खिलैया किधौं ताके हैं।
कैधौं हेमकार कुल तारन निदान नीके, नूपुर नवल किधौं नूपुर ललाके हैं॥

श्रीकृष्णकी जङ्घाओंकी शोभा आनन्ददायिनी और शोभाशाली है। देखिये—

कैधौं विधि बागवान अधिक उतायलमें, कदली उलटि धरे सींमा सोभ मालकी।
कैधौं भुज उदर हृदय सीस मन्दिरके, उदित अधार धरे मंडी जोति जालकी॥
ग्वालकवि कैधौं सुरराज बन नन्दनके, औंधी धरि दीनी हैं सरों महा सुढालकी।
कैधौं केलि कूलमें कलानिधि मुखीन कों ये, मोदकी करनवारी जंघें नन्दलालकी॥

श्रीकृष्णके कण्ठ भूषणको लेकर कविने बेजोड़ कल्पना की है—

कारन करन कुल कलस कलानिधिकौ, नन्द कौ कुवर कान्ह करुना कौ कन्द है।
ताके ग्रीव गोप ओप गहनौ जग्यौ है जोर, जड़ित जड़ाऊ जातरूप तें बुलन्द है॥
ग्वालकवि हीरनकी पांखुरी चहूँघा चारु, ताके बीच लाग्यौ एक नीलम अमन्द है।
मानों स्याम कम्बुपाय पूजिकें चढ़ायौ काम, अरविन्द तापै आय बैठ्यौ अलिनंद है॥

श्यामकी ठोड़ीकी शोभाकेलिए कवि उपमान ही नहीं जुटा पा रहा है। फिर भी ग्वाल कल्पनाके पङ्खों पर उड़कर प्रयास करते हुए थकते नहीं हैं—

कैधौं स्याम मनिकी बनाई है विरञ्चि बेल, गिन्दुक खिलौना कामदेव सुखदानि कौ।
कैधौं श्री किसोरीके सनेह नभ मारग पै, धाइवे कौं गुटका असित अखरान कौ॥
ग्वालकवि कैधौं एक विकसित इन्दीवर तानें, तरें सालिग्राम प्रगट कलान कौ।
कैधौं चारु चमक चमंकत चहूँ दिसि तें, चैन कौ चबूतरा चिड़क चक्रपान कौ॥

श्रीकृष्णकी रसना कैसी अनुपम है! कविने उसकी उपमा कसौटीसे दी है। परन्तु कसौटीमें तो रसनासे अनेक गुणोंका अभाव है। देखिये—

वह तौ असित रूप लसित न नैंकों जाकौ, यह तौ ललित छवि सहित दिखाय हैं।
पाहन कठोर वह कोमल अमल यह, वह तौ अचल यह चलन सुभाय हैं॥
ग्वालकवि वाते जातरूपकी जंचाई होत, याते षटरसके सवाद जानेजाय हैं।
नन्द महाराजके सपूत ब्रजराज जू की, रसना कसौटी पर ये गुन सिवाय हैं॥

श्रीकृष्णका हास्य एक मनोवैज्ञानिक औषधि है, जिससे जगत्का त्रास, शोक, शंका, क्रोध, उदासी, चिन्ता आदि व्याधियाँ दूर होती हैं। यह संसारका वशीकरण-साधन है। देखिये—

कैधौं सोक संका त्रास क्रोध औ उदासी आदि, ताके मारिबे कौं मंजु कारन बुलंद है।
कैधौं चित-चूरकी करनहार चिंता ताहि, तुरत उचाटिबे कों इलम अमंद है॥

ग्वालकवि कैधौं मातु जसुदा औ नन्द जूके, मन करखनकों सघन फाँस फन्द है।
कैधौं बनितानके बसीकरन करिबे कों, बाँके श्रीबिहारीजी कौ हास मन्द मन्द है॥

श्रीकृष्ण दीनदयाल हैं। उनकी चितवन दुःखोंको दूर करनेवाली, दारिद्रयका नाश करके सुख समृद्धिकी दाता, त्राता और भवसागरसे पार करनेवाली है।—

दीन दिल दुखकी विदारनवली है वेस, नेमके निवारन है दारिद बिसालकी।
सम्पति समूहकी जरूर विसतारन है, आनँद अपारनकी करन रसालकी॥
ग्वालकवि दीरघ दयाकी पैजपारन है, कारन है तीनों लोक रच्छनके ख्यालकी।
भलें भवसागर उतारन उबारन है अधम उधारन निहारन गुपालकी॥

भगवान् श्रीकृष्णकी मुख शोभा वर्णनातीत है, जिसके आगे आनेमें मुकुर भी मुकर जाता है और चन्द्रमा दास प्रतीत होता है। श्रीकृष्णकी मुख शोभा अनिंद्य है, सुखका सागर है :—

जाके आगे आइवे में मुकुर मुकर जाय, भयौ वे उकर याते सह्यौ दाग दुख कौ।
रूप कौ हू रूपके तौ रूपै जो रती कौ भरि, मंडल अनंत है अनंत अति सुख कौ।
ग्वालकवि मंजुल मवासौ मन्त्र पोहिवे कौ, जंत्र जग जोहिबेकौ मानिक वपुष कौ।

कञ्जन कौ आकर कहा करि रुकैगौ सर चाकर सो, चंद ब्रजचंद तेरे मुख कौ॥

श्रीकृष्णके सम्पूर्ण रूपकी शोभाका वर्णन कविने इन शब्दोंमें किया है। देखिये :—

पद कोकनद, औ गुलफ कंज कोस से हैं, जंघ कदली सी लंक केहरी बिसाल सौ।
उदर सुपान नाभि कूप सी गम्भीर गुर, उर नवनीत पानि पल्लव रसाल सौ॥
ग्वालकवि भुज लोल लतिका लहरदार, कण्ठ कल कम्बु मुख नील कंज जाल सौ।
केस स्याम चौर गौन गज सौ सुगन्ध वारे, मुकुट ससी सौ सब तन है तमाल सौ॥

जिसके गुणोंका वर्णन करनेमें मौन व्रतधारी व्यास, शेषनाग भी हार गये, जिसकी तन-द्युति सूर्यकी आभासे भी अधिक है, जो अज्ञान अन्धकारका भी नाश करनेवाले हैं, ऐसे हृषीकेश महाराज श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करनेकी शिक्षा देता हुआ कवि निम्नांकित छन्दके साथ श्रीकृष्णके नखशिख वर्णनको सम्पूर्ण करता है :—

सेवत नरन आस भरन निमित्त नित्त, सेवैं क्यों न जाहि जो रची सभा सुरेश की।
तिमिर अज्ञान को विनास्यौ चहैं दीपन सों, ध्यावैं क्यों न जाहि जाते दुति है दिनेस की।
ग्वालकवि जाके गुन गनकौं कहै सो कौन, मौन व्रतधारी व्यास हारी मति सेस की।
त्याग जग-विष, मन सिख सिख सिखमेरी, लिख दिख नख सिख छवि हृषिकेस की॥

• • •

पावन चरित्र-मेघकी सुपावन बूंद

"आँधी "आँधी" नहीं है, आँधी तो है वह समय-चक्र, जो हमारे जीवनको अपनी गतिमें बाँध कर भागा जा रहा है। यदि हम समय की गतिपर विजय पाना चाहते हैं, तो हमें समय को बाँधकर रखना पड़ेगा। पर प्रश्न है किस प्रकार? उत्तर है समस्त प्राणियोंके कल्याण का चित्र बनाकर, उसे बनानेमें अपनेको मिटा कर।"

मेरा एक दिन

श्रीउपेन्द्र

मेरा एक दिन :

कितना सुन्दर है, कितना मूल्यवान् है! वह मेरे उस जीवनका, जो सीमित होते हुये भी असीमित है, जो सछोर होतेहुये भी अछोर है, छोटा किन्तु महान् अंश है। मेरे जीवनकी अनन्त घटनाओं, अनन्त कहानियों, घात-प्रतिघातों और उत्थान-पतनका दुर्ग तो उसी पर खड़ा है।

वह मुझे वहुत प्रिय है। मैं चाहता हूँ कि उसे बाँधकर रख लूँ, युग-युगोंकेलिए बाँधकर रख लूँ। इस प्रकार बाँधकर रख लूँ कि प्रलयके वज्र हस्त भी उसे मुझसे न छुड़ा सकें।

मैं उसे वड़ी उत्कण्ठासे– वड़े साहससे बाँधनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। चाहता हूँ कि उसे पकड़कर सुएकी भाँति पीजड़ेमें बन्द कर दूँ।

पर पलों और विपलोंका बना हुआ मेरा एक दिन भागा जा रहा है, द्रुतगति से भागा जा रहा है। ज्यों-ज्यों वह सघनतम केशवाली संध्याकी ओर बढ़ता जा रहा

है, त्यों-त्यों मेरी आकुलता भी बढ़ती जा रही है और मैं विस्फारित नैनोंसे उसकी ओर देख कर यह सोचने लगा हूँ कि क्या मैं अपने प्रिय, अपने मूल्यवान् दिनको बाँधकर न रख सकूँगा ?

है कोई वैज्ञानिक, है कोई दार्शनिक और है कोई कलाकार, जो मुझे अपने प्रिय एक दिनको—अपने मूल्यवान् एक दिनको बाँधकर रखनेका कोई उपाय बता सके !

ठहरो यह कौन है, जो अपने एकताराके तारोंमें अपनी उँगलियोंसे झंकार पैदा करके मेरे अधीर मनको छू रहा है ? क्या तारोंसे निकले हुए स्वर किसी सन्देशकेलिए शब्दचित्र बना रहे हैं ?

अरे, यह तो भ्रमरोंकी भाँति गुनगुना रहे हैं—"एकनाथ, एकनाथ।" तो क्या एकनाथ—महात्मा एकनाथ !!

क्या कोई अपने एकताराके तारोंपर महात्मा एकनाथके जीवनकी कोई कहानी दुहरा रहा है ? सुनो तो उस कहानीको ! कदाचित् उस कहानीमें ही मेरे एक दिनको बाँध रखनेकी युक्ति हो !

ग्रीष्मके दिन थे, सूर्य धधकतेहुए अग्निके गोलेके सदृश आकाशके मध्यमें जल रहा था। रेतीली धरती इस प्रकार तप रही थी, मानों किसीने उसे खौलते हुए पानीमें भिगोनेके पश्चात् ही बड़े यत्नसे बिछ दिया हो। उष्ण हवाके झँकोरे इस प्रकार चल रहे थे, मानों किसी प्रचण्ड शत्रुकी तोपें आगके गोले फेंक रही हों।

महात्मा एकनाथ अपने कन्धे पर काँवरी लिये हुए रामेश्वर मन्दिरकी ओर बढ़े चले जा रहे थे। काँवरीपर दोनों ओर दो कलश थे, जिनमें त्रिवेणीका पवित्र जल था। धूप, शीत और वर्षाके कितने ही शरोंको अपनी छातीपर सहकर वे यहाँ तक पहुँच पाए थे। पैरोंमें छाले पड़ गये थे, पर मन यह सोच-सोचकर शीतल हो रहा था कि अब वह घड़ी सन्निकट है, जब वे रामेश्वरजीको त्रिवेणीके जलसे नहलाकर कृतकृत्य हो उठेंगे।

पर वे रुक क्यों गये ? वे रुक कर उस गर्दभकी ओर क्या देख रहे हैं, जो जलती हुई बालूकी शय्यापर हाँफता हुआ आँखें निकाल कर पड़ा है। उसकी वे आँखें ! ऐसी लग रही हैं, मानों सम्पूर्ण शिवलोक ही तृषित होकर उनके भीतरसे झाँक रहा हो।

अरे तो क्या सचमुच शिवलोक तृषित होकर उसकी आँखोंके भीतरसे झाँक रहा है ? देखो-देखो, एकनाथ अपने कलशोंका जल बड़े भक्ति भावसे, बड़ी श्रद्धासे उसे पिला रहे हैं।

साथके लोग बोल उठे—"एकनाथ, एकनाथ, यह क्या कर रहे हो ? अपार कष्टों से लाया हुआ त्रिवेणीका पावन जल गर्दभको पिला रहे हो !"

एकनाथने उत्तर दिया, "दिखाई नहीं देता तुम्हें, इसकी आँखोंमें भगवान् रामेश्वर झांक रहे हैं।"

तो क्या यही "प्राणाय नमो सर्वमिदं वशे" मेरे एक दिनको बाँध कर रखनेकी युक्ति है ? पर अब तक तो मैं अपने जीवन-पथपर कितने ही नर-कङ्कालोंकी छातीपर पैर रखकर ही आगे बढ़ा हूँ। मेरी आँखोंके सामने ही कितने ही बेबस, तृषित पक्षीकी भाँति अपने अधर-चंचुको खोले हुये पड़े थे, पर मैंने कभी उनके भीतर नैनोंका नीर गिराने को कौन कहे, कभी रुककर उनकी ओर देखा तक नहीं।

पर आज मैं ऐसा न होने दूँगा। दिन ढल रहा है। संध्या निकट ही है। पर आज मैं सन्ध्या न होने दूँगा। अस्त होते हुए सूर्यको आज मैं रोक कर रहूँगा। आज मैं अपने एक दिनको सचमुच तोतेकी भाँति पींजड़े में बन्द करके रखूँगा।

पास ही नालीमें गिरा हुआ शूकरीका छोटा सा शिशु करुणध्वनिसे रो उठा। उसकी वह सकरुण ध्वनि ! ऐसा लगा, मानों सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सिसक रहा हो।

पर जब उसकी ओर ध्यानसे देखा तो ज्ञात हुआ कि वह तो कर्दमके साथ ही साथ मलसे लिपटा हुआ है।

मन गिर गया। एक कोनेमें घृणाकी लहर सी जाग उठी—"अरे, उसे हाथसे स्पर्श करूँ ? घिनौना जीव और वह भी कर्दम तथा मलमें लिपटा हुआ।"

वह अपनी छोटी-छोटी आँखोंसे मेरी ओर निहार उठा। मुझे लगा, जैसे उसकी आँखोंके पटल पर कोई रह-रहकर दृश्य-चित्र दिखा रहा हो—"प्राणाय नमो सर्व मिदं वशे, प्राणाय नमो सर्व मिदं वशे।"

मेरे भीतर विद्युतकी तरंगें सी उमड़ पड़ीं। मैंने उसे झपटकर अपने हाथोंमें उठा लिया और अपने रुमालसे उसके शरीरको इस प्रकार साफ करने लगा, मानों मैं स्वयं अपने ही शरीरको साफ कर रहा हूँ।

मैं अपने भावोंमें तन्मय हो गया। मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, मानों सम्पूर्ण ब्रह्मांडही मेरे हाथोंमें आगया हो, मानों मैं किसी विराटके गातको ही मल-मलकर स्वच्छ कर रहा हूँ।

पर कुछ क्षणोंके पश्चात् जब मैं अपने भावसे पृथक हुआ तो देखा शूकरीका शिशु स्वस्थ होकर भागा जा रहा था, पर मेरा भागता हुआ 'एक दिन' मेरी मुट्ठीमें था। क्योंकि अब मेरे भीतर प्रकाश ही प्रकाश था। वह प्रकाश, जिसमें केवल दिन ही दिन होता है।

मेरे 'एक दिन' को बाँधकर रखनेकी युक्ति—"प्राणाय नमो सर्व मिदं वशे।" आप भी चाहें तो इसी युक्तिसे अपने 'एक दिन' को बाँधकर रख सकते हैं।

आत्म तत्वके खोजकी विचारपूर्ण वैज्ञानिक विधि

"मानव शरीर एक वैज्ञानिक प्रयोगशालाके ही सदृश है। जिस प्रकार वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में विभिन्न उपकरणोंके द्वारा एक 'तत्व' की खोज करता है, उसी प्रकार जीवको भी शरीरकी प्रयोग-शालाके भीतर बैठकर एक तत्वकी खोज करनी है। वह तत्व है, आत्मतत्व। यही जीवका—मनुष्य का परम लक्ष्य भी है।"

मनुष्य—एक प्रयोगशाला

श्रीहरिकिशनदास अग्रवाल

मनुष्यका देह एक प्रयोगशाला है, जिसके भीतर बैठ अनुसंधान-परख करते हुए जीव अपने लक्ष्यकी प्राप्ति कर सकता है। हमारी निजी प्रयोगशालाके निजी अनुभव हमें वताते हैं कि हम क्या हैं? जिसकी बुद्धि ठीक रास्ते पर न चले, उसे बुद्धिमान नहीं, बुद्धिमन्द कहेंगे। हमारी निजी प्रयोगशालाके निजी अनुभव हमें वताते हैं कि हम क्या हैं? क्या हम कोई परिवर्तनशील पदार्थ हैं अथवा एक ऐसे अपरिवर्तनशील तत्व हैं, जो परिवर्तनशील पदार्थोंका अनुभव कर रहे हैं?

हमारी इन्द्रियाँ एक ही वस्तुका विभिन्न रूपोंमें अनुभव करती हैं। गुलावका फूल नासिका द्वारा सुगन्धित प्रतीत होता है, त्वचा द्वारा कोमल, आँखों द्वारा लाल रङ्गका और कानों द्वारा सूख जानेपर शब्दायमान है। जिह्वापर रखकर उसकी कड़ुवाहट अनुभव करते हैं। किन्तु इन सव विभिन्न प्रकारके अनुभवोंका अनुभवकर्ता एक ही है। एक ही ज्ञान पांचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा एक ही वस्तुका पाँच प्रकारसे अनुभव कर रहा है।

सिनेमाके पर्देपर आकार-प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रतीत होते हैं। एक दृश्य

आता है, दूसरा जाता है, किन्तु इन सब आनेजानेवाले दृश्योंका द्रष्टा एक ही है। जो दर्शक है, वह अन्त तक नहीं बदलेगा, दृश्य कितने ही क्यों न बदल जाएँ। इसी प्रकार संसारमें मनुष्यके आगे परिवर्तनका चक्र आया, तो वही उसका द्रष्टा है। समुद्र या सड़क आ गई, कोई भीड़ आ गई, या कुछ नहीं सामने आया, तो भी कुछ नहीं होनेका वही द्रष्टा है। जाग्रतमें जाग्रतके पदार्थोंका साक्षी है। साक्षीका धर्म केवल देखना मात्र ही है। वह अपना सम्बन्ध किसी दृश्यसे नहीं जोड़ता, साक्षी तटस्थ होता है। जिस प्रकार चित्रपटके भीतर पर्दा एक ही रहता है और चित्रके सभी दृश्योंका आधार जैसे पर्दा ही है, इसी प्रकार जगत्का तथा जगत्के सभी दृश्योंका द्रष्टा एक ही है। द्रष्टा है, तो दृश्य है। यदि द्रष्टा नहीं है तो दृश्य भी नहीं है। दृश्योंके अभावमें भी द्रष्टा है, जो दृश्योंके अभाव को देखता है। जिस प्रकार सुषुप्तिमें कुछ न होनेका अनुभव करता है, स्वप्नमें वही द्रष्टा मनकेद्वारा एक नया संसार रचता है और उसे देखता है। स्वप्नावस्थामें द्रष्टा दृश्य-विवेक नहीं रखता। अतः कोई भयानक स्वप्न आ जानेपर भयभीत हो उठता है अथच प्रसन्नताका कोई दृश्य आनेसे प्रसन्न हो उठता है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंमें द्रष्टा एक ही है। अवस्था-भेदसे द्रष्टामें किसी प्रकारका भेद नहीं होता है।

जैसे डाक्टर किसी रोगीको देखता है और नीति-नेतिद्वारा रोगका निदान करता है। 'थर्मामीटर' लगाकर कहता है, बुखार नहीं, ब्लेडप्रैशर यन्त्र लगाकर कहता है, इसे ब्लेडप्रैशर नहीं, एलेक्ट्रोटायर ग्राम लगाकर कहता है, इसे हृदय-दौर्बल्य नहीं। पेशाव देखकर वताता है, डायविटीज नहीं। एक्सरे करके कहता है कि फेफड़ोंमें कोई त्रुटि नहीं। कोई रोग नहीं, जिससे रोगीं स्वयंको पीड़ित मानता है। इसी प्रकार जीव अपनी प्रयोगशाला में, सव दृश्योंमें 'नेति-नेति' द्वारा अपने लक्ष्यतक पहुँचता है तथा इस बातका निदान करता है कि, "मैं कौन हूँ ?"

'मैं' इन्द्रिय नहीं', क्योंकि मैं इनका द्रष्टा हूँ। इन्द्रियाँ अपनी प्रयोगशालामें वस्तु को भिन्न-भिन्न प्रकारसे कसौटी पर कसती हैं, किन्तु उनका अनुभव करनेवाला एक ही होनेके कारण एक ही परिणाम पर पहुँचता है। इन्द्रियाँ परिवर्तनशील हैं। आँख कभी पहाड़ को, कभी सागरको और कभी सड़कको देखती है, किन्तु इन सबके भीतर देखने वाला एक है। कानोंमें भी विभिन्न शब्दोंका श्रवणकर्ता एक ही है।

त्वचासे दृढ़ता और कोमलताका, जिह्वासे मीठा, कड़ुवा और तीखे स्वादका अनुभवकर्ता एक ही है। इसी प्रकार नासिका सुगंध और दुर्गन्धका अनुभव करती है।

किन्तु इन सब परिवर्तनशील इन्द्रियोंमें अनुभवकर्ता एक ही है, जो इन सबका अनुभव करता है।

यह तो हमारी इन्द्रियोंकी प्रयोगशालासे सिद्ध हुआ। मनमें भी विचार बदलते ही रहते हैं, कभी एक, कभी दूसरा और कभी तीसरा। इस प्रकार विचारोंका ताँता लग

जाता है। हमें स्वयं इस बातका पता नहीं चलता कि अगला विचार क्या और कब होगा ?

मनुष्य शरीरका अनुभव तो करता है, उस पर अधिकार जमाता है, किन्तु उसे ही अगले विचारका पता नहीं। सिरके एक भी काले बालको सफेद होनेसे मनुष्य रोक नहीं सकता, जिसकी वह वात-वातमें डींग मारकर कसम खाता है।

मनके भीतर उठते विभिन्न विचारोंका द्रष्टा एक ही है। विचारों की विभिन्नता से द्रष्टा विभिन्न नहीं हो जाता। विचार कभी सतोगुणी, कभी तमोगुणी और कभी रजोगुणी प्रकारके उठते रहते हैं। किन्तु द्रष्टा सत, रज और तमसे परे एक ही रहता है, जो तटस्थ होकर देखता है।

बुद्धिकी प्रयोगशालामें निश्चय करना उसका अपना धर्म है। वह कभी कुछ, कभी कुछ, निश्चय करती है। कभी सतोगुणी, कभी तमोगुणी, कभी राजसी, किन्तु बुद्धिका प्रकाशक द्रष्टा एक ही है। जो बुद्धिकी मलिनताको जानता है, वह बुद्धिसे भिन्न है।

मनुष्यकी प्रयोगशालामें यहाँ तक यह बात सिद्ध हुई कि जीव न इन्द्रिय है, न मन और न बुद्धि ही है। इन सबका द्रष्टा, आत्मा प्रकाशक है।

पञ्च महाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशसे बना हुआ यह शरीर कभी विकार युक्त होता है, कभी रोगी और कभी स्वस्थ होता है। जन्मके पश्चात् बाल्य, कैशोर्य, युवा, वृद्धत्व और फिर मृत्यु। इन सब प्रकारकी दैहिक अवस्थाओंके बदलने पर भी देहकी प्रयोगशालामें बैठा हुआ अनुभवी ज्योंका त्यों शुद्ध, बुद्ध और मुक्त ही है, जिसे किसी भी नामसे पुकारो, हमारा कोई मतभेद नहीं।

बुढ़ापेमें आकर मनुष्य कहता है कि मैं बाल्यावस्थामें बड़ा सुन्दर था। स्कूलमें प्रथम आया करता था, खेलों में बहुत निपुण था अर्थात् वह बचपनके अनुभवोंका बुढ़ापेमें वर्णन करता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि बचपन व बुढ़ापेका अनुभवी एक ही है।

जब मनुष्यका शरीर मृत्युको प्राप्त हो रहा होता है, तो उसे साक्षात् अनुभव होता है कि इस देहका देहान्त हो रहा है, किन्तु जो यह बात जानता है कि देहान्त हो रहा है, उसका देहान्त नहीं होता है, वह तो मृत्युका भी ज्ञान रखता है। उसकी मृत्यु नहीं होती है। मनुष्यको मृत्युका ज्ञान होता है, किन्तु ज्ञानकी मृत्यु कभी नहीं होती है।

रमण महर्षिने १६ सालकी उम्रमें अनुभव किया कि जब वह लेटे थे, तो उन्हें यह ख्याल हुआ कि मृत्यु आ रही है, शरीर शान्त हो रहा है, किन्तु जो यह बात जानता है कि शरीर शान्त हो रहा है, वह देखनेवाला तो शरीरसे भिन्न है। उन्होंने अपने आपको शरीरका देखनेवाला अनुभव किया, जिस निष्ठाके कारण आगे चलकर वह भारतके महान् महर्षि हुए।

शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी परिवर्तनशीलताके भीतर अपरिवर्तनशील आत्मा का अनुभव मनुष्यकी अपनी प्रयोगशालाका लक्ष्य है।

●●●

श्रीकृष्णभगवान्‌के एक गुण—परम आकर्षणत्वका झाँकी

"श्रीकृष्णमें अद्‌भुत आकर्षण है। स्वरूपमें आकर्षण, सौन्दर्यमें आकर्षण, वचनमें आकर्षण, गमनमें आकर्षण, नर्तनमें आकर्षण, वादनमें आकर्षण, नमनमें आकर्षण, गर्जनमें आकर्षण—श्रीकृष्ण आकर्षण हैं, परम आकर्षण हैं। श्रीकृष्णका यही आकर्षणत्व तो उनका ब्रह्मत्व है।"

कर्षतीति कृष्णः

श्रीमती रामप्यारीदेवी एम० एल० सी०

सच्चिदानन्द परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णकी वृन्दावन-लीला अति मधुर है, आकर्षक है, अद्‌भुत और अनिर्वचनीय है, चराचर सभी प्राणी श्रीकृष्ण-प्रेममें निमग्न हैं। इसमें भी गोपी-प्रेम तो सर्वथा अलौकिक और अचिन्त्य है, वहाँ वाणीकी गति ही नहीं, मन भी उस प्रेमकी कल्पना नहीं कर सकता। उस गुणातीत, अप्राकृत, "केवल प्रेम" की कल्पना गुणोंसे निर्मित प्राकृत मन कर ही कैसे सकता है ? इस प्रेमका असली स्वरूप तो यत्किञ्चित् उसीकी समझमें आ सकता है, जिसको वे प्रेमधन श्रीकृष्ण स्वयं समझाना चाहते हैं। उसे समझ लेने पर तो वह तत्क्षण गोपी ही बन जाता है, वास्तवमें वह वर्णनकी वस्तु नहीं।

"कर्षतीति कृष्णः" कृष्णमें अद्‌भुत आकर्षण है। वे आकर्षणके केन्द्र विन्दु-चरम केन्द्र हैं। प्राणियोंको अपनी ओर अनायास खींचते और आकृष्ट करते हैं। विषयोंमें लिप्त जीवको अपने अपार प्रेम और सौन्दर्यकी छटाके द्वारा अपनी ओर खींचकर उसका उद्धार करते हैं। यदि इतना पर्याप्त न हुआ तो अपनी बाँसुरीके मधुर, मनोहर, दिव्य संगीत और तालके द्वारा, उसे सब कुछ छोड़कर, अपने पास बरबस आने और अपने ऊपर निछावर हो जानेको बाध्य करते हैं।

यही दशा तो ब्रजकी उन अनपढ़, गवांर गोपियोंकी हुई, जिन्हें अपनी अनुपम श्याम छटा और बाललीलाके द्वारा ही मुग्ध करके—दधिके मटकोंको फोड़कर–पनघट पर जाती, छेड़-छेड़कर ही पागल बनाकर सन्तुष्ट नहीं हुए—अपितु "शरत्पूर्णिमा" की रात को :—

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुंकुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोऽभिरञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ।।

और तब बाँसुरीकी उस धीमी सुरीली तानको सुनकर उनकी दशा क्या हुई, किस प्रकार हुई—यह शुकदेवजीके मुखसे ही सुनिये—

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं ब्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोल कुण्डलाः ।।

इनका अनंग लौकिक नहीं, योगिजनदुर्लभ, प्रबल कामना थी । अखंण्डानन्द प्रदान करनेका भगवान्‌का निमन्त्रण जो था ! वंशीकी ध्वनि गोपियोंके मन–प्राण पर छा गई । देखिए—

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ।।

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ।।

दूध दुहते दुहना छोड़कर, उसे औटाते हुए उफनता छोड़कर, पकाती हुई भोजनको बिना उतारे छोड़कर, भोजन परसते हुए परसना छोड़कर, बच्चोंको पिलाते हुए पिलाना छोड़कर, पतियोंकी सेवा सुश्रुषा करते हुए सेवा छोड़कर, उबटन लगवाते हुए लगवाना छोड़कर, उलटे-पुलटे वस्त्र पहनते हुए चल पड़ीं । पिता, पति, भाई, बन्धु किसीके रोकने पर भी न रुकीं, क्योंकि विश्वमोहन कृष्णने उनके प्राण, मन और आत्मा-सब कुछका अपहरण जो कर लिया था । वंशीकी मधुर तानसे यह तो दशा उनकी थी, जो चल पड़ीं, परन्तु कुछ घरोंमें बन्द रहनेके कारण निकल नहीं सकीं और कृष्णका ध्यान करते-करते उन्हींमें तल्लीन हो गईं । कुछकी दशा तो ऐसी हुई कि परम प्रियतमके वियोगके तीव्र तापसे उनके जितने अशुभ कर्म थे, भस्म होगए । इतना ही नहीं, उनके पुण्य-फल भी उनके अवतरित परब्रह्म श्रीकृष्णमें संलग्न प्रगाढ़ ध्यानके कारण विलीन हो गये । इस प्रकार वे शुभ और अशुभ-दोनों कर्मोंके बन्धनोंसे मुक्त होकर अपने गुणमय शरीरको त्याग कर कृष्णमें ही लीन हो गईं ।

ऐसा अद्‌भुत है आकर्षण श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका और ऐसी मोहक है तान उनकी बाँसुरीकी ! जिस किसीपर उनकी कृपा हो जाती है, उसके कानोंमें उनकी बाँसुरीकी वह मधुर मोहक तान गूँज जाती है, उनकी झलक किसी न किसी रूपमें मिल जाती है, फिर वह उनके प्रेममें मतवाला-बावला होकर झूमने लग जाता है । उसके उस आन्तरिक सुखकी, आनन्दकी नापतौल किस प्रकार की जा सकती है ? क्योंकि वह सुख और वह आनन्द मानवीसुख और आनन्दसे परे, उसकी परिधिसे बाहर की वस्तु है । उसी प्रेमकी घूंट पीकर तो "बेचारा खुसरू" भी गा उठा —

काफिरे इश्क में मुसलमानी मेरा दरकार नेस्त ।
हर रगे मन तार गश्तम्[हाजवे जुन्नार नेस्त ॥

—मैं मुरलीवालेके (इश्क) प्रेममें फँसकर अब तो हिन्दू होगया, मुझे अब मुसलमानी नहीं चाहिये । मेरे शरीरका रग-रग उसके प्रेमकी तारसे बँध चुका, अतः मुझे जनेऊ भी, जो हिन्दू बननेकेलिए आवश्यक है, नहीं चाहिए । वह और कहता है :—

अय सरे बाबीने मन बरखेज़ ऐ नादा तबीब ।
दर्द मन्दे इश्करां दारू बजुज़ दीदार नेस्त ॥

—ऐ नादाँ (मूर्ख) (तबीब) वैद्य, मेरे सिरहानेसे हट जा । जो इश्कसे दर्दमन्द हो रहा है, जिसे प्रेमकी पीर बेध रही है, उसके लिये "दीदार"—उनके दर्शनको छोड़कर दूसरी दवा हो ही नहीं सकती ।

और उस मुरलीधरके प्रेममें मतवाली, संसारके राज्यवैभवको तिलाञ्जलि दे, कठिनसे कठिन यातना सह कर भी, प्रेम रसकी प्यासी, प्रियतमके दर्शनकेलिए तड़पनेवाली मीरा भी तो गाती है:—

दरद की मारी बन-बन डोलूँ, वैद्य मिला नहिं कोय ।
घायल की गति घायल जानै, कि जिन घायल होय ॥

× × ×

मीराके प्रभु पीर मिटै जब वैद सँवलिया होय ।

उसी वंशीवालेके प्रेममें मतवाला "रसखान" भी तो गाता है :—

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
आठहुँ सिद्धि नवों निधि को सुख, नन्द की गाय चराय बिसारौं ॥

ऐसे ही लोगोंकेलिए भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है :—"जो सर्वत्र मुझको देखता है, सबमें मुझको देखता है, उससे मैं कभी अदृश्य नहीं होता और न वह मुझसे अदृश्य होता है। जो नित्य मुझमें मन लगाकर अन्तर-मनसे मेरी उपासना करते हैं, वे निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले मेरे भक्त परस्पर मेरी ही चर्चा-लीला करते हैं और उसीसे सन्तुष्ट और प्रेमपूर्वक नित्य युक्त होकर मुझे भजनेवाले भक्तोंको मैं ईश्वरीय बुद्धिसे योग करा देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।" ठीक है, प्रेमीको तो प्रेमास्पद भगवान्‌के इङ्गितानुसार लोकधर्म, वेदधर्म, देहधर्म और सारे कर्म तथा लज्जा, धैर्य, शरीरसुख, आत्मसुख आदि सबका त्यागकर देना पड़ता है। श्रीकृष्ण प्रेमकी प्राप्तिका आधार श्रीकृष्णार्थ सर्वस्व त्याग ही है। तभी श्रीकृष्ण रूपी परम शान्ति प्राप्त होती है। तभी तो उद्धवजी की ज्ञान गरिमा व्रजमें गोपियोंके पास गल गई और वे प्रेमके प्रवल प्रवाहमें वह गये। निम्नांकित पंक्तियोंमें प्रेमका प्रभाव देखिये—

लखि गोपिन के प्रेम नेम ऊधो को भूल्यो,
गावत गुण गोपाल फिरत कुञ्जन में डोल्यो।

× × ×

भूल्यो यदुपतिनाम कहत गोपाल गोसांई।

× × ×

छिन गोपिन के पग परै धन्य तुम्हारो नाम।

× × ×

धाइ धाइ द्रुन्द में भेंटहिं ऊधो छाके प्रेम॥

× × ×

"फिर ऊधो यदुपति पै गये, किये गोप के भेस।"
"भूले यदुपति नाम कह्यो गोपाल गोसाईं।"
"प्रेम सिन्धु ही जानि के, ऊधो पकरे पाय।"
"सुमिरत व्रज को प्रेम नेम कछु नाहिंन भावै।
उमग्यो नैनन नीर बात कुछ करत न आवै॥"

रसखानकी पंक्तियोंमें भी उसी प्रेमकी झलक देखिये—

सेस, महेस, गनेश, दिनेश, सुरेसहु जाहि निरन्तर ध्यावैं।
जाहि अनादि, अनन्त, अखण्ड, अछेद, अभेद, सुवेद बतावैं।
नारद से सुक व्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

तभी तो भगवान्‌ने उद्धवसे कहा है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथाभवान् ॥

भगवान्का वचन है :—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

इसलिये भगवत्प्राप्तिकेलिए सच्चे भूख प्यासकी सी तड़प होनी चाहिए। तभी 'तांस्तथैव भजाम्यहम्' कहेंगे।

तभी तो भगवान्ने ज्ञान निष्ठाके नामसे पराभक्ति-प्राप्तिका क्रम और फल बताते हुए कहा है :—

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्यच ॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्काय मानसः।
ध्यान योगपरो नित्यं वैराग्यः समुपाश्रितः ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

—शुद्धकी हुई बुद्धिको अपने भीतरके शुद्ध आत्म-तत्वके साथ युक्त करके और दृढ़ तथा अविचल इच्छा शक्तिसे अपनी सम्पूर्ण सत्ताको संयत करके, इन्द्रियोंसे शब्द स्पर्श आदि विषयोंका परित्याग करके और मनसे राग एवं द्वेषको दूर हटाकर, निर्जन प्रदेशमें निवास करनेवाला, मिताहारी, संयत किए हुए वाणी, शरीर एवं मनवाला, निरन्तर ध्यान के द्वारा अन्तस्तम आत्माके साथ युक्त हुआ, कामना और आसक्तिका सर्वथा परित्याग किया हुआ, अहङ्कारको, आहंकारिक बलको, अभिमानको, कामनाको, क्रोधको, अधिकृत करने की भावना और सहज प्रेरणाको छोड़कर, मैं-पन और मेरे-पनके भावसे रहित, शान्त मनुष्य ब्रह्मस्वरूप होनेके लिए समर्थ हो जाता है।

जब मनुष्य ब्रह्म हो जाता है, प्रसन्न चित्त हो जाता है, शोक नहीं करता, कामना

नहीं करता, समस्त प्राणियोंके प्रति सम-बुद्धि हो जाता हैं, तव मेरे प्रति पराभक्तिको प्राप्त करता है।

इस पराभक्तिके द्वारा जो और जितना मैं हूँ, मेरी सत्ताके यथार्थस्वरूप और समग्रतत्वोंके साथ मुझे जानता है। इस प्रकार यथार्थ और समग्र रूपमें मुझे जानकर इसके अनन्तर मुझमें प्रविष्ट होजाता है।

ध्यानपूर्वक देखा जाय तो गोपियाँ उपर्युक्त सभी विशेषताओंसे परिपूर्ण थीं। श्रीकृष्णकी दृढ़ धारणासे अन्तःकरणको श्रीकृष्णमय बनाये रखना, श्रीकृष्णकेलिए अन्य समस्त विषयोंको त्याग देना, अहंकार, बल, दर्प, काम आदि सबका श्रीकृष्णमें ही उत्सर्ग कर देना और स्वर्ग तथा मोक्षमें भी ममत्व न रखना—यही तो मनमोहन वंशीवालेको पाने का सर्वोत्तम आधार है। इसी आधारसे उस परमाधारकी प्राप्ति होती है और उसकी परम मधुरलीला विश्वके कण-कणमें दिखाई देती है।

● ● ●

साँचे नामकी लागै भूख

जब हाथ, पैर और शरीरके दूसरे अङ्ग धूलसे सन जाते हैं, तब वे पानीसे धोनेसे साफ हो जाते हैं।

मूत्रसे जब कपड़े गन्दे हो जाते हैं, तब साबुन लगाकर उन्हें धो लेते हैं। ऐसे ही यदि हमारा मन पापोंसे मलिन होजाय तो वह नामके प्रभावसे स्वच्छ हो सकता है।

केवल कह देनेसे मनुष्य न पुण्यात्मा बन जाते हैं, न पापी। किन्तु वे तुम्हारे कर्म हैं, जिन्हें तुम अपने साथ लिखते जाते हो, तुम्हारे कर्म तुम्हारे साथ-साथ जाते हैं।

यदि मैं नामका जप करूँ, तो जीऊँ, यदि भूल जाऊँ तो मर जाऊँ, उस सच्चेके नामका जप बड़ा कठिन है।

यदि सच्चे नामकी भूख लग उठे, तो खाकर तृप्त हो जाने पर भूखकी व्याकुलता चली जाती है।

स्वामी वह सच्चा है, उसका नाम सच्चा है।

—गुरु नानकदेव

"हमारा आजका जीवन अत्यधिक अभावमय है। चारों ओर अभाव, दैन्य और आपद्। पर यह सब क्यों? इसलिये कि आज हमारे जीवनमें धर्म नहीं है, सदाचार नहीं है, शील-सुष्ठता नहीं है। हम जिस सुख और शान्तिकेलिए समाकुल हैं, वह बिना धर्माचरणके नहीं प्राप्त हो सकती, नहीं प्राप्त हो सकती।"

लक्ष्मीके अवतरणका रहस्य

लक्ष्मीके ही शब्दोंमें

श्रीगजानन

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह, मनुष्योंकी भावी उन्नति और अवनतिके पूर्व लक्षण क्या हैं?

भीष्मने कहा—धर्मराज, मनुष्योंको उनका मन भावी उन्नति और अवनतिके लक्षण बतला देता है। इस सम्बन्धमें लक्ष्मी और इन्द्रका सम्वाद सुनो। ब्रह्माजीके समान तेजस्वी, निष्पाप, महातपस्वी नारद, अपनी तपस्याके प्रभावसे, ब्रह्मलोक-निवासी ऋषियोंके तुल्य होकर इच्छानुसार तीनों लोकोंमें घूमने लगे। वे एक दिन प्रातःकाल उठकर, स्नान करने की इच्छासे, ध्रुवलोकमें गंगा-किनारे गये। उसी समय शम्बरका नाश करनेवाले वज्रधारी इन्द्र भी वहाँ आये। महर्षि नारद और इन्द्र स्नान तथा नित्य कर्म करके गङ्गा-किनारे चमकीली बालूसे परिपूर्ण पृथ्वीपर बैठकर देवर्षियोंकी कही हुई प्राचीन कथा कहने लगे। थोड़ी देर बाद किरणें फैलाते हुए सूर्यदेव उदय हुए। तब नारद और इन्द्रने उठकर भक्ति से उनकी स्तुतिकी। उसी समय सूर्यके समीप, उन्हींके समान प्रकाशवाली, एक और ज्योति

दीख पड़ी। उस ज्योतिका तेज तीनों लोकोंमें फैल गया। इन्द्र और देवर्षि नारद उस ज्योति को देखने लगे। अब वह ज्योति धीरे-धीरे उनकी ओर चली। वह नक्षत्रोंके समान चमकीले आभूषण पहने, मोतियोंकी माला धारण किये, साक्षात् लक्ष्मीका मनोहर वेष रक्खे—अप्सराओंके आगे-आगे अग्निकी शिखाके समान, उनकी ओर आने लगी। देखते-देखते कमलों में निवास करनेवाली कमला देवी विमानसे उतरकर तीनों लोकोंके अधीश्वर इन्द्र और देवर्षि नारदके पास आ गईं। नारद समेत इन्द्रने देवीकी पूजा करके हाथ जोड़कर कहा—सुन्दरी, आप कौन हैं? कहाँसे, किसलिए यहाँ आई हैं और अब आपको कहाँ जाना है?

लक्ष्मीने कहा—देवराज, संसारमें स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी मुझे पानेकेलिए यत्न करते हैं। मैं सब प्राणियोंके ऐश्वर्यके निमित्त सूर्यकी किरणों द्वारा विकसित, कमलसे उत्पन्न हुई हूँ। मैं लक्ष्मी, भूति, श्री, श्रद्धा, मेधा, सन्नति, विजिति, स्थिति, धृति, सिद्धि, स्वाहा, स्वधा, नियति, स्मृति और तुम्हारी सम्पत्ति-स्वरूप हूँ। मैं विजय करनेवाले धार्मिक राजाओंके सेनापति, ध्वज, राज्य और अन्तःपुरमें तथा डटकर संग्राम करनेवाले सत्यवादी, धर्मात्मा, बुद्धिमान, ब्रह्मनिष्ठ, दानशील वीरोंमें निवास करती हूँ। मैं पहले सत्य-धर्मके बन्धनमें रहकर असुरोंके यहाँ रहती थी, किन्तु अब उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, इसलिए तुम्हारे पास आना चाहती हूँ।

इन्द्रने पूछा—देवि, आपने पहले दैत्योंका आश्रय क्यों लिया था और अब उन्हें त्यागकर मेरे पास क्यों आना चाहती हैं?

लक्ष्मीने कहा—देवराज! जो मनुष्य धैर्यवान्, अपने धर्ममें निरत, स्वर्गके अभिलाषी और सत्वगुणी होते हैं, उन्हीं पुरुषोंपर मैं अनुरक्त रहती हूँ। दानव लोग पहले दान, अध्ययन और यज्ञ करते थे। वे देवताओं और पितरोंकी आराधना, गुरु और अतिथिका सत्कार करते तथा सत्यवादी होते थे। वे जितेन्द्रिय, दान्त, ब्राह्मणोंके हितैषी, श्रद्धावान्, क्रोधहीन और ईर्ष्यारहित थे। पुत्र, स्त्री और मंत्रियोंका पालन करते थे। वे कभी क्रोध करके आपसमें लड़ते-झगड़ते नहीं थे। दूसरेका ऐश्वर्य देखकर डाह नहीं करते थे। वे दाता, गृहीता, आर्य, विनीत, सरल, दृढ़ भक्त, कृतज्ञ, प्रियवादी, लज्जावान् और व्रतधारी थे, वे पर्वके दिनोंमें नित्य स्नान करते थे। वे लोग विद्वान्, उपवास और तप करनेवाले, विश्वस्त, ब्रह्मवादी, प्रतिष्ठित और धन संग्रह करनेमें यत्नवान् थे। वे सूर्योदयके पहले उठते थे। वे न तो प्रातःकाल सोते थे और न दिनमें ही। वे रातमें दही और सत्तू खाते न थे। वे पवित्र होकर ब्रह्मवादी रहते हुए प्रातःकाल घी और मंगल वस्तुओंका दर्शन, ब्राह्मणोंकी पूजा और आधी रातको शयन करते थे। वे दीन, अनाथ, बूढ़े, निर्बल, पीड़ित और स्त्रियोंपर दया करते थे, उनको धन देते और प्रसन्न रखते थे। डरपोक, खिन्न,

घबड़ाये हुए, रोगी, दुर्बल, हृतसर्वस्व और दुखी मनुष्योंको आश्वासन देते थे। वे सब धर्ममें तत्पर रहते थे। वे हमेशा सत्य और तपमें लगे रहते थे, गुरुओं और वृद्धोंकी सेवा करते थे। वे देवताओं, पितरों और अतिथियोंका सत्कार करते और उनसे बचा हुआ भोजन करते थे। वे न तो अकेले भोजन करते थे और न पर स्त्री-गमन करते थे। वे सब प्राणियों पर दया करते थे। वे लोग शून्य स्थानमें, पशुओंमें और अयोनिमें वीर्यपात नहीं करते थे। वे पर्वके दिनोंमें मैथुन नहीं करते थे। वे सब दान, दक्षता, सरलता, उत्साह, निरहंकार, मित्रभाव, सत्य, तपस्या, पवित्रता, दया, प्रियवाक्य और मित्रोंके साथ अद्रोह आदि श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त थे। निद्रा, आलस्य, द्वेष, ईर्ष्या, असावधानी, विषाद और आसक्ति आदि दोष उनमें नहीं थे।

उक्त गुणोंसे युक्त होनेके कारण सृष्टिके आरम्भसे लेकर अभी तक मैं दानवोंके पास रही हूँ। कालके प्रभावसे अब वे लोग सब गुणोंको त्यागकर काम और क्रोधके वशीभूत होगये हैं। उनमें धर्म नहीं रह गया है। धार्मिक बूढ़े सभासदोंके धर्मकी बात कहने पर युवक लोग उनकी हँसी उड़ाते और उनसे ईर्ष्या करते हैं। धर्मात्मा, वृद्धोंके आने पर, युवक लोग, पहले की तरह न तो उठकर खड़े होते हैं और न प्रणाम करके उनका सम्मान करते हैं। पिताके मौजूद रहने पर पुत्र मालिक बन बैठता है। दासत्व स्वीकार करके भी निर्लज्जतासे अपनेको स्वाधीन बतलाते हैं और निंद्य काम करके धन संग्रह करना चाहते हैं। रातमें जोर-जोरसे चिल्लाते हैं। अब अग्निका तेज कम हो गया है। पुत्र पिताकी आज्ञा नहीं मानते और स्त्री स्वामीका कहना नहीं मानती। वे सन्तानकी रक्षा नहीं करते, माता, पिता, गुरु, वृद्ध, आचार्य और अतिथिमें श्रद्धा नहीं रखते। भीख नहीं देते, देवता, अतिथि और गुरुका सत्कार किए बिना भोजन कर लेते हैं। उनके रसोइये बड़ी अपवित्रतासे रसोई बनाते हैं और बड़े-बूढ़ोंके मना करने पर भी भोजनकी सब सामग्री खुली हुई रखते हैं। अन्न बिखरा पड़ा रहता है, जिसे पशु-पक्षी खराब किया करते हैं और दूध खुला हुआ रहता है। वे लोग झूठे हाथसे घी छू लेते हैं। कुदाल, फावड़ा, पिटारी और बर्तन घरमें इधर-उधर पड़े रहने पर भी स्त्रियां उनकी परवाह नहीं करती हैं। वे घरकी चहारदीवारी या दीवार गिर जाने पर उसे नहीं बनवाते। पशुओंको बाँधकर उन्हें चारा-पानी नहीं देते। नौकरों और लड़कोंके सामने. उन्हें दिये बिना, स्वयं चीजें खाते हैं। वे लोग वृथा मांस खाते और अपने ही भोजनकेलिए खीर, खिचड़ी, पुआ और पूड़ी बनवाते हैं। दिन निकल आने पर भी वे लोग शय्या नहीं छोड़ते। उनके घरोंमें दिन-रात झगड़े हुआ करते हैं। वे लोग बड़े-बूढ़ोंका सम्मान नहीं करते। वे सब धर्म-भ्रष्ट होकर आश्रमवासियोंसे द्वेष रखते हैं। उनमें कोई भी पवित्र नहीं रहता। वे वर्णसंकर होनेलगे। वे न तो वेदज्ञ ब्राह्मणोंका सम्मान करते और न वेदहीन ब्राह्मणोंको दण्ड देते हैं। दासियां दुराचार करती हुई माला और कङ्कण आदि पहनने लगीं। स्त्रियां पुरुषका वेष और पुरुष स्त्रीका वेष बनाकर क्रीड़ा करनेमें बड़े प्रसन्न होते हैं। पूर्वजों द्वारा सत्पात्रमें दान दिए जानेका फल उनके पुत्र-पौत्र आदिको मिल चुका, किन्तु नास्तिकताके कारण उनमें अब कोई उस फलके

भोगनेका अधिकारी नहीं। किसीकी कोई चीज खो जाती है तो वह विश्वासपात्र मित्र पर सन्देह करके उससे उस चीजके बाबत पूछने लगता है। अच्छे वंशमें उत्पन्न लोग दूसरों का धन हड़प लेनेकी घातमें रहने लगे हैं। अनधिकारी तपस्या करने लगे और कोई-कोई वृथा नियम करके और कोई बिना नियमके ही अध्ययन करते हैं। कोई-कोई शिष्य गुरुकी सेवा नहीं करते और कुछ गुरु लोग शिष्योंके साथ मित्रताका व्यवहार करते हैं। बूढ़े पिता-माता पुत्रपर दबाव रखनेमें असमर्थ होकर दीन भावसे उनसे भोजन माँगते हैं। आचार्य लोग शिष्योंकी रुचिके अनुसार प्रातः काल उनसे कुशल पूछते और उनके कहने पर चलते हैं। समुद्रके समान गम्भीर विद्वानोंसे श्रेष्ठ बुद्धिमान् मनुष्य खेती आदि करने लगे हैं। मूर्ख लोग श्राद्धमें भोजन करते हैं। सास-ससुरके सामने बहू नौकरोंपर हुकूमत करती और गर्व के साथ अपने स्वामीको बुलाकर उससे बातचीत करती है। पिता बड़े यत्नसे पुत्रको प्रसन्न करता है। अनेक लोग तो क्रोधसे पुत्रोंको धन बांटकर स्वयं कष्ट भोगते हैं। किसी का धन राजा या चोरों द्वारा हरे जाने अथवा आगसे जल जानेपर उसके भाई बन्धु उससे द्वेष करके उसकी हँसी उड़ाते हैं। सारांश यह है कि दानवोंके वंशमें सबके सब कृतघ्न, नास्तिक, पापी, गुरुकी स्त्री हरनेवाले, अभक्ष्यभोजी, नियमहीन और श्रीभ्रष्ट हो गये हैं।

हे देवेन्द्र, दानवोंके इस प्रकार दुराचारी हो जानेके कारण अब मैं उनके पास नहीं रहूँगी। इसीसे तुम्हारे पास आई हूँ। तुम मेरी संवर्धना करो, इससे सब देवता भी मेरा सम्मान करेंगे। मैं जहाँ रहती हूँ, वहीं मेरी प्रिय सखी जया, आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजिति, सन्नति और क्षमा, ये आठ देवियाँ भी रहती हैं। जया सबसे श्रेष्ठ है। हम सब इस समय असुरोंको त्याग करके तुम्हारे पास आई हैं। अब हम धर्मपरायण देवताओंके पास रहेंगी।

लक्ष्मीके यों कहने पर देवर्षि नारद और इन्द्रने उनको प्रसन्नकरनेकेलिए बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उसी समय शीतल सुगन्धित पवन देवताओंके घरोंमें मन्द-मन्द चलने लगा। सब देवता लक्ष्मी सहित इन्द्रको बैठे हुए देखनेकी लालसासे पवित्र स्थानोंमें बैठ गए। अब हरे रंगके घोड़े जुते हुए रथ पर सवार होकर इन्द्र लक्ष्मी और अपने प्रिय मित्र महर्षि नारदके साथ, अपनी सभाको गये। वहाँ देवताओंने उनका बड़ा सम्मान किया। तब नारदने इन्द्रके मनका भाव समझकर, लक्ष्मीके सम्मानार्थ, महर्षियों समेत उनसे स्वागत-प्रश्न किया। अब स्वर्गसे अमृतकी वर्षा होने लगी। सब नगाड़े अपने-आप बजने लगे। उनसे दिशाएँ प्रसन्न और शोभित हो उठीं। अन्न पैदा करनेकेलिए बादल ठीक समय पर बरसने लगे। अब कोई धर्मके मार्गसे विचलित नहीं होता। पृथ्वी सब रत्नोंकी खान हो गई। सर्वत्र वेदकी ध्वनि होने लगी। सब मनुष्य पुण्यात्मा, मनस्वी और सदाचारी हो

गये । देवता, किन्नर, यक्ष, राक्षस और मनुष्य समृद्धशाली तथा उदार हो गये । हवा चलने पर वृक्षोंसे फलोंकी कौन कहे, फूल भी अकालमें नहीं झरते । सब गायें दूध देनेवाली और कामधेनु हो गईं । कोई किसीको कड़वी बात नहीं कहता ।

हे धर्मराज ! इन्द्र आदि देवता इस प्रकार लक्ष्मीका सम्मान करने लगे । जो ब्राह्मणोंकी सभामें जाकर इसका पाठ करते हैं उनके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और उन्हें लक्ष्मी प्राप्त होती है । तुमने उन्नति और अवनतिके विषयमें जो पूछा था, उसके उदाहरण-स्वरूप मैंने यह इतिहास कहा है । तुम चित्त स्थिर करके इसके मर्मको समझो ।

गोपी भाव—प्रेम

ऊधौ जौ अनेक मन होते ।

तौ इक स्याम-सुन्दर कों देते, इक लै जोग सँजोते ।।
एक सों सब गृह-कारज करते एक सों धरते ध्यान ।
एक सों स्याम रंग रँगते तजि लोक-लाज कुल-कान ।।
को जप करै, जोग को साधै, को पुनि मूँदै नैन ।
हिये एक रस स्याम मनोहर मोहन कोटिक मैन ।।
ह्याँ तो हुतो एक ही मन सो हरि लै गए चुराई ।
'हरीचंद' कोउ और खोजि कै जोग सिखावहु जाई ।।

सखी ए नैना बहुत बुरे ।

तब सों भये पराये, हरि सों जब सों जाइ जुरे ।।
मोहन के रस-बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरे ।
मेरी सीख प्रीत सब छाँड़ी ऐसे ये निगुरे ।।
जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहि हठ सों तनिक मुरे ।
'हरीचंद' देखत कमलन से बिष के बुते छुरे ।।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

● ● ●

"भक्तोंके मन, प्राण और हृदयके साथ ही साथ उनके नयनोंकी ज्योति भी बदल जाती है। उनके मन, प्राण और हृदयके सिंहासनपर जहां भगवान्‌की दिव्य मूर्ति स्थापित हो जाती है, वहाँ उन्हें लोकके समस्त व्यवहारों, कृत्यों, पर्वों और उत्सवोंमें भी भगवान् दृष्टिगोचर होते हैं। भक्तोंकी यह अनन्यता ही तो उस भगवान्‌को भी प्रकट होनेकेलिए विवश कर देती है, जो 'अदृश्य' और निराकार है।"

भक्त कवियोंकी दीप-अर्चना

श्रीनागेश्वरसिंह 'शशीन्द्र' विद्यालंकार

दीपावलीका यह पावन पर्व सदियोंसे मानव-मनको प्रेरित करता आ रहा है। यह तिमिरपर प्रकाशकी विजयका लोकोत्सव है, तभी तो कृष्णोपासक कवियोंने भी उसे अपनी लेखनीसे खूब सँवारा है। दीप-अर्चनाकी यह परम्परा सूरदाससे लेकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तक चली आयी है।

कृष्णभक्त कवियोंने रासरसेश्वर कृष्णकी रूप माधुरीको ही दीपोंकी उन झिलमिल पंक्तियोंमें देखा है। दीपोत्सवके दिन नन्दबाबाकी नगरी देखने ही योग्य है। उस शोभाका वर्णन करते हुए सूरदास कहते हैं:—

आज दिपत दिव्य दीपमालिका।
मानो कोटि रवि, कोटि चन्द छवि, विमल भई निसि कालिका।

गज मोतिन के चौक पुराए, बिच बिच बज्र प्रवालिका।
गोकुल सकल चित्रमणि मंडित, शोभित झाल झमालिका॥

और वहाँ राधाजीका कहना ही क्या? मानो दीपावलीका यह लोकोत्सव उन्हींके लिए आया है :—

पहिरि सिंगार बनी राधाजी, संग लिए व्रज बालिका।
झलमलदीप समीप सोंज भर, कर लिए कञ्चन थालिका।
आपुन हँसत, हँसावत ग्वालन, पटक पटक दै तालिका।
नन्द भवन आनन्द बढ़्यौ अति, देखत परम रसालिका।
सूरदास कुसमन सुर वरसत कर मंजुल पुट मालिका।

दीपावलीके दिन गायोंको सुन्दर ढङ्गसे सजाया गया। वृन्दावनदासने भी उस स्थितिसे लाभ उठाया और उनकी वाणी मुखरित हो उठी :—

अब आयौ त्यौहार दिवारी,
या उत्सव के हम अधिकारी।
गाय सिंगारन के सब साज,
कीजै कहत सुवन व्रजराज।

भगवान् कृष्णका आदेश पाकर गोपोंने अपनी गायें सजादीं। फिर वनमें जाकर मोरपंखोंसे अपनेको भी सजा लिया है :—

मोरपच्छ कर कर एकठौरी,
सब ही लाये भर भर कौरी।
झूमरि गंडा सबहि बनावैं,
खोजि खोजि गिरिधातुजुलावैं।

लीपैं पोतैं चित्र बनावैं गोपन भवन महा छवि पावैं।
सोनी पट का जड़ियाँ घने, गायन कौं बहु गहने बने॥

और उस शोभाको देखनेकेलिए श्रीकृष्ण भी नन्दबाबाकी गोदमें बिठा दिए गए हैं, जहाँ दीपावलीका विधिवत् पूजन होता है :—

हरि हलधर बैठारे गोद, व्रजपति भरे महा मन मोद।
खील बतासेनु हटरीं भरीं, राम श्याम के अगे धरीं।

मोहन कहै मोय वह देउ, मेरी हटरी दाऊ लेउ ।
हौं जू बड़ी हटरी ले जैहौं, तब दाऊ को पूजन देहौं ।
सुनि कै हँसौं घोष की रानों, मुरलीधर तू अधिक सयानों ।
परम साधु बेटा बलराम, तू अति ही झगराऊ श्याम ।
मोहू ते रंचक नहिं डरै, बड़े बन्धु सों झगड़ौ करै ।
हौं लाड़िलौं तुम्हारों जैसें, दाऊ लाड़ करौ मोहि ऐसे ।
जब यौं कही सुवन व्रजराज, सुनिकैं रीझै गोप समाज ।
बलकी हटरी हरिहिं दिवाई, फूले मानों नव निधि पाई ।
विधि सौं हटरी पूजन कियौ, नन्द दान विप्रन कूँ दियौ ।

इसी दीपावलीके दिन, बाबा नन्दके यहाँ हटरी पूजनकी भी व्यवस्था की गयी है । उस हटरी पूजनका वर्णन करते हुए अष्टछापके प्रसिद्ध कवि गोविन्दस्वामीने भी कहा है :—

हटरी बैठ श्रीगोपाल ।

रतनजटित की हटरी बनी है, मोतिन झालर परमर ।
ढरुराढरु कुली और कुल्हैया, भरि भरि धरे पकवान रसाल ।
पान, फूल और सोंधें सहित, सब बांटत हैं नन्द के लाल ।
रोमावली, प्रेमावली, ललिता, चन्द्रावली व्रज मंगल बाल ।
चलो सखी जहाँ पैठ लगी है, बेंचत हैं गोकुल के गोपाल ।
सब सुन्दरी घर घर ते आईं, निरखत नैन विसाल ।
गोविन्द प्रभु पिय चित चोर्‌यौं तब, बंधी प्रेम की पाल ।

महाकवि दिवाकरकी रचनामें भी दीपावली देखने ही योग्य है । उनका वह दीप-पर्व भगवान् कृष्णके विना फीका फीका सा लगता है :—

दीपदान देवनको चढ़ाति सब,
जुआ खेल दम्पति हिये में हरसाती है ।
वेश्या गण रसिक रिझावें कै सिंगार देह,
मुख मुसकाति हरे राग बरसाती है ।
भनत 'दिवाकर' अटा पै घाट बाट गेह,
रोशनी तमाम चहुँ कोन दरसाती है ।
प्यारो ब्रजराज बिन पापी द्विजराज सखी
राति ये दिवारी की अराति सम आती है ।

और इसी दीपपर्वपर 'ऊधो' की 'ज्ञानगठरी' श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर' के द्वारा पुनः परखी जाती है । गोपियोंकी विरहाग्निमें ऊधोका ब्रह्मज्ञान भी जला देखा जाता है :—

आतुर न होहु ऊधो आवति दिवारी अबै,
बैसी ए पुरन्दर कृपा जौ लहि जाएगी ।
गिरिवर धारि जो उबारी ब्रज लीन्यो बलि
तौ तौ भाँति काहू वह बात रह जायगी ।
नातर हमारी भारी विरह बलाय संग,
सारी ब्रह्मज्ञानता तिहारी बह जायगी ।

फिर इसी दीपावलीके दिन 'दरद दिवानी' मीरा इस भौतिक परिवेशसे निकलकर उस महाज्योतिमें ही मिल जाना चाहती है :—

जल बल भई भस्म की ढेरी,
अपने अंग लगा जा ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
जोत में जोत मिला जा ।

यो देवानां नामधा एक एव

जितने छन्द हैं, सब उसी ईश्वरकी महिमाका वर्णन करते हैं । वह सब छन्दों या वेद-वाणियोंमें व्याप्त विश्वरूप वृषभ है, या वर्षारूप प्राण है । उसीकी महती वर्षण-शक्तिसे विश्व जन्म ले रहा है ।

इस विराट् यज्ञका यज्ञपतिदेव वही एक ब्रह्म है । उस यज्ञके देवको ही अग्नि भी कहा गया है ।

वही यज्ञका देवता है, वही पुरोहित, ऋत्विज और होता है और वही प्रत्येक अध्यात्म केन्द्रमें मन, प्राण और पंच भूत—इन सात रत्नोंका आधान करनेवाला है ।

● ● ●

कवीरकी भक्तिका एक प्रभावपूर्ण चित्र

"कवीरकी भक्ति एक महावीरकी उस तलवार के सदृश है, जो विकार रूपी शत्रुओंके उन्मूलनको ही अपना चरम लक्ष्य मानती है। कबीरने अपने भक्ति खांड़ेसे मनके विकारोंपर प्रहार तो किया ही है, समाज और लोकके दुर्गुणोंपर भी उससे कसकर चोटकी है। इस रूपमें हम कह सकते हैं कि कवीर की भक्ति 'स्व' के लिए नहीं, समाज और लोकके लिए थी।"

कबीरकी लोकरंजिनी भक्ति

श्रीराधेश्याम वंका

भक्तिके आचार्योंने आराध्यसे स्थापित पांच प्रकारके सम्बन्धोंकी चर्चा अधिकतर की है—दाम्पत्यभाव, वात्सल्यभाव,सख्यभाव,दास्यभाव और शांतभाव। कवीरकी वाणी में अन्य सम्बन्ध भी दृष्टिगत होते हैं, परन्तु प्रवल स्वर दाम्पत्य भाव का ही है। इसके अतिरिक्त कवीर दो-तीन स्थान पर कहते हैं कि मैंने उस 'अलेख' को अपना 'दोसत' (दोस्त) वनाया है—

देखो कर्म कवीर का, कछु पूरब जनमका लेख।
जाका महल न मुनि लहै, सो दोसत किया अलेख॥

वह अलेख दोस्त (मित्र) भी है, साथ ही माता-पिता भी है। सूर और तुलसीके साहित्यमें ब्रह्म पुत्रके रूपमें और साधक माता और पिताके रूपमें हमारे समक्ष आते हैं, परन्तु कवीर का भाव इसके विपरीत है। यहाँ कवीर ही पुत्र हैं और आराध्य माता पिताके रूपमें वर्णित हैं। वात्सल्य और सख्य-भावसे अधिक, किंतु दाम्पत्य-भावसे

न्यून महत्त्व है दास्यभावका । अनेक स्थानोंपर कबीर आराध्यको 'साईं' या 'स्वामी' और अपनेको 'सेवक' और दास' कहते हैं और चरन कँवलमें पड़े रहनेकी चाहना करते हैं। उसीमें पड़े रहनेमें इनको मौज मिलती है। तुलसीके समान कबीरमें भी मर्यादा भाव है। वह मर्यादाभाव कबीरके दाम्पत्यभावमें भी झलकता है।तुलसीके समान ही कबीर भी अपने रामकी महत्ता और अपनी दीनता प्रकट करते हैं। परन्तु कबीरके 'राम' निर्गुण हैं, इस कारण कबीर निर्गुण रामकी महत्ताका उतना गुण-गान न कर सके, जितना तुलसी। तुलसीके समक्ष अपने रामका सम्पूर्ण जीवन और उस जीवनमें पाये जानेवाले शीला-चरणके अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत थे, जिनका कबीरके सामने अभाव था। इतना होनेपर भी कबीर अपने रामके गुण गाते थकते नहीं और उन्हें पूर्ण विश्वास है कि 'राम'के सानि-ध्यसे उनका सम्पूर्ण दैन्य सदाकेलिये दूर हो जायगा। दास्य भावके अतिरिक्त कबीर की शान्तभाव-प्रधान भक्तिकी झलक उन स्थलोंपर प्राप्त होती है, जहाँ जगत्की असारता और क्षणभंगुरताकी ओर स्पष्ट निर्देश करके वे 'राम' की अनन्तता तथा असीमता का वर्णन करते हैं। कबीरको इस बातसे कोई विरोध नहीं है कि रामकी उपासना कोई पति या पिताके भावसे करे अथवा सखा या स्वामीके भावसे करे, अवश्य ही भक्ति निष्काम हो, एकनिष्ठ हो। इस भक्तिकेलिये जितनी बाधक वस्तुयें हैं—क्या वैयक्तिक जीवनमें और क्या सामाजिक जीवनमें—कबीरने उन सभीका खण्डन किया है और सभीसे वे सावधान रहे हैं। वैयक्तिक जीवनमें काञ्चन–कामिनी–कीर्तिका त्याग आवश्यक है। जो इनसे दूर नहीं रहते, उनका नाश उसी प्रकार निश्चित है, जैसे रुईमें लपेटी आगसे रुई नष्ट हो जाती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरका दमन करना ही पड़ेगा। इन्द्रिय-निग्रहके अभावमें साधकको सफलता मिलनी असम्भव है, वाह्य आचारों और आडम्बरोंके बवंडरसे दूर रहकर ही परमतत्वकी प्राप्ति हो सकती है।

सामाजिक क्षेत्रमें कबीर उन सभी दोषोंको साफ-साफ कहते हैं, जिनके कारण भक्तिके वास्तविक तत्वपर आवरण पड़ गया है। यहीं हमें कबीरकी भक्तिका लोक संग्रही स्वरूप दिखाई पड़ता है। समाजकी गन्दगीको दूर करना कबीरने अपनी भक्तिका एक आवश्यक अङ्ग समझा था। हिन्दू और मुसलमान, अपने राम और खुदाको लेकर लड़ते हैं, इसकेलिये दोनों जातियोंको कबीरकी फटकार सुननी पड़ी थी। उन्होंने ब्राह्मणोंसे साफ-साफ पूछा—

एक बूँद एकै मलमूतर एक चर्म एक गुदा।
एक ज्योति थैं सब उतपन्ना को बाम्हन को सूदा॥

कबीरकी फटकार तीखी और खरी होती थी। उन्होंने सभी प्रकारके बाह्याचारों का बुरी तरह खण्डन किया है, क्योंकि लोग मूल भावनाको भूलकर बाह्यरूपको ही

मूल मानते चले जा रहे थे और फलस्वरूप भक्तिका तत्त्व ढँकता चला जा रहा था।

कबीरकी भक्तिभावना सहज पथकी थी। कबीरको बाहरी प्रदर्शन तथा ढोंग प्रिय न थे—

सहज-सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोई।
जिन्ह सहजैं हरिजी मिलैं, सहज कहीजैं सोई॥

जीवन और जगत्में एक परमतत्व व्याप्त है। उसीकी आराधना सहज ढंगसे करनी चाहिये। किसी बहुत बड़ी साधना या दिखावेकी आवश्यकता नहीं, अपनेमें सद्गुणों का सम्पादन करते हुए शील-सदाचारपूर्वक भक्ति करनी चाहिये। कबीरकी सहज भावकी भक्तिमें हठयोगका भी वर्णन मिलता है। कबीर हठयोगकी कठिनतासे परिचित थे, अतः हठयोगका उपदेश उन्होंने नहीं किया। कबीर तनको साधनोचित बनानेकेलिये तथा मनको अपने राममें लगानेकेलिये कुछ दूरीतक हठयोगकी साधनाको स्वीकार करते हैं, परन्तु प्रधानता सदा ही भक्तिको देते हैं, जो सभीकेलिये सदा सुलभ है।

कबीरकी भक्तिके आदर्श हैं 'सती और 'सूर' । तुलसीका आदर्श चातक है। उन चातक जैसे भक्तोंको एक मान, भरोसा, बल, आशा और विश्वास अपने मेघसम स्याम रामका है, परतु कबीरको स्फूर्ति और प्रेरणा 'सती और सूर' (शूर) ही देते हैं—

सति सूरा तन साहि करि तन मन कीया घाण।
दिया महोला पीव कू तब मड़हट करै बखांण॥

सती और शूरवीरने शरीरको सजाकर तन्मनकी घानी पिरवा दी, अपना अहं प्रिय को अर्पित कर दिया। तब कहीं मरघट उसकी प्रशंसा करता है।

आत्मत्याग ही महत्त्व-पूर्ण है। जैसे सती—जो पूर्णतः पतिरत है, एक निष्ठ है, भूलकर भी अन्य पुरुषका विचार नहीं लाती और शूर—जो समर—भूमिमें चोट पर चोट खानेपर भी रणक्षेत्रसे मुख नहीं मोड़ता, पीठ नहीं दिखाता, इसीप्रकार कबीर की दृष्टिमें भक्त अनेक बाधाओं और विपदाओंसे युद्ध करते हुये शूरके समान प्रेम-क्षेत्र में आगेही बढ़ते जाते हैं तथा प्रियके प्रति उनकी निष्ठा, उनका प्रेम वैसा ही होता है. जैसाकि सतीका।

कबीर नखसे शिखातक भक्त हैं। उनकी वाणीमें हठयोगका पुट अवश्य है, किन्तु फिर भी प्रेमही उनकी जीवन-साधनाका मूल स्वर है। शान्त और दास्य, सख्य

तथा वात्सल्यभावोंकी अनुभूति उन्होंने अवश्य की है, परन्तु उनके हृदयके आनन्दकी सहज और गहरी अनुभूति दाम्पत्यभावमें मिलती है । अगम्य और अलक्ष्य तत्वको स्वरूपतः अगम्य और अलक्ष्य स्वीकार करके भी प्रियसे मिलनकी उनकी उत्कट अभिलाषा ने अगम्य तथा अलक्ष्यको भी प्रेमके लिये गम्य तथा प्रेमका लक्ष्य बना दिया है । सती और शूर उस अलक्ष्यपर मर मिटनेका पाठ पढ़ाते हैं । जगत्की नश्वरता उनकी भक्तिभावनाको अधिकाधिक प्रगाढ़ बनाती है, परन्तु भक्त कवीर भक्तिके सागरमें आशिख डूबकर भी बाहर देख रहे हैं । व्यक्तिगत जीवनकी अनीतियों तथा समाजकी कुरीतियोंपर भी उनकी वक्र दृष्टि है । जीवनकी दुर्बलताओं तथा समाजके दोषोंसे व्यक्ति और समाज दोनोंको सावधान करते हुये तथा राहके काँटोंको हटाते हुए मंजिल पर पहुँचाकर सभीको प्रेमकी वही, वैसीही आनन्दानुभूति कराना चाहते हैं, जिसमें वे स्वयं निमग्न हैं । यही कवीरके भक्तहृदयकी विशेपता है ।

● ● ●

ईश्वर-मेरा पथप्रदर्शक

मैं परम पिता परमेश्वरकी संतान हूँ, वे मेरे प्यारे पिता हैं । जब भी आवश्यकता होती है, मैं अपने पितासे बात करता हूँ । अपनी आवश्यकता चाहे वह किसी प्रकार की हो, इस जगत्की हो अथवा आध्यातिक हो—अपनी सारी आवश्यकता अपनी प्रार्थना के समय उनके सामने रखता हूँ और मेरे पिता परमेश्वर मेरी आवश्यकताको पूर्ण करते हैं । क्या कभी यह संभव है कि पिता अपनी संतानको व्याकुल, पीड़ित और पतित दशामें देखे ?

मेरी प्रत्येक आवश्यकतामें ईश्वर मेरे सहायक हैं । मेरी प्रत्येक भूखको ईश्वर ही मिटाते हैं । ईश्वर पद-पदपर मेरे साथ हैं और प्रत्येक दिन प्रत्येक पल मेरे पथ-प्रदर्शक हैं । अब मैं प्रबुद्ध हूँ, अब मैं सत्य निष्ठ हूँ, मुझमें धैर्य, दयालुता और स्नेह भरपूर है । मैं सभी कुछ कर सकता हूँ और ईश्वरके माध्यमसे सभी कुछ हो सकता हूँ । मुझमें सत्य का वास है । ईश्वर ही मेरे स्वास्थ्य हैं । मैं बीमार नहीं पड़ सकता । ईश्वर मेरी शक्ति हैं, जो कभी असफल नहीं होती और जिससे सफलताकी प्राप्ति होती है । ईश्वर मेरे सर्वस्व हैं । मेरे साथ ईश्वर हैं, स्नेह है और सत्य है । अतः मैं निर्भय हूँ ।

ईश्वरकी आत्मा मेरे आगे-आगे चलती है, अतः मेरे लिए स्वास्थ्य सुख, समृद्धि, और सफलता निश्चित है ।

—फिल्मोर

—०—

"भक्तोंकी जीवन-कथा तप और त्यागसे सुपावन होती है । इतनी सुपावन कि उसकी समानतामें सुरसरिका प्रवाह भी नहीं ठहरता । सुरसरिमें तो स्नान करनेके पश्चात् लोग पावन होते हैं, पर भक्तोंकी जीवन-कथा तो केवल श्रवण-मात्रसे पावन ही नहीं बना देती, अपितु प्राणोंके मलको भी स्वच्छ कर देती है ।"

भक्त कुंभनदास

श्रीकृष्णगोपाल माथुर

"अखण्ड भूमण्डलाचार्य" पदवीसे विभूषित श्रीवल्लभाचार्यके पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियोंमें भक्तशिरोमणि, महाकवि कुंभनदासका समय वि० स० १५२५ से १६४० तक माना गया है । कहते हैं कि इनके पिता भगवानदास एक समय कुंभ पर्वपर सकुटुम्ब प्रयाग गये थे । वहाँ उन्होंने सेवाद्वारा एक महापुरुषको प्रसन्नकर पुत्र-प्राप्ति का वर प्राप्त किया । पुत्र होनेपर कुंभकी स्मृतिमें उसका नाम 'कुंभन' रक्खा ।

अपने ग्राम जमनावतामें आठ वर्षकी आयुमें उपवीत-संस्कार होनेके पश्चात् पिताका स्वर्गवास हो जानेसे कुंभनका पालन-पोषण उनके काका धर्मदासने किया ।

वि० सम्वत् १५३५ में भगवान् श्रीगोवर्द्धननाथजीने गोवर्द्धनपर्वतपर स्वतः मूर्तिके रूपमें प्रकट होकर कुंभनको अपने साथ खेलनेकेलिए भेजनेकी आज्ञा धर्मदास को दी । वहीं कुंभनको कृपायुक्त भगवत्साक्षात्कार प्राप्त हुआ, जो प्रेमी सखाभावसे निरन्तर चलता रहा ।

सं० १५५० में विवाह और १५५५ में श्रीगोवर्द्धननाथजीके अनन्य सेवक वल्लभाचार्यकी कृपासे इनकी दिव्यवाणीमें गेय काव्य शक्तिका संचार हुआ एवम् इन्हीं दीक्षागुरुने इनको ब्रह्म-सम्बन्ध देकर श्रीनाथजीके सान्निध्यमें नित्य ॠतु अनुसार पद गानेकी सेवा सौंपी। कुंभनने सर्व प्रथम यह पद गाया:—

"सांझ के साँचे बोल तिहारे।
रजनी अनत जगे नन्द-नन्दन आये निपट सकारे।………………"

सं० १६०२ में आचार्यने अष्टछापमें इन्हें भी सम्मिलित कर लिया। आचार्यके वर-प्रदानसे कुंभनको १० पुत्र प्राप्त हुए, जिनमें लघु पुत्र चतुर्भुजदास पिताके समान ही महान् भगवत्भक्त, कवि एवम् श्रीनाथजीके सखा बन उनके साथ खेला करते थे।

एक दिन लीलाविहारी श्रीनाथजी कुंभनदासको लेकर एक ब्रजवासीके घर माखन खानेकेलिए गये। वहाँ कुंभनकी पीठपर चढ़कर छींकेपर रखे हुए माखनको लेकर खाने लगे। सहसा प्रभुका पीताम्बर ढीला पड़ गया। दोनों हाथ तो माखनमें लगे थे। अतः प्रभुने अन्य दो हाथ प्रकटकर उनसे पीताम्बरको कस लिया। उस चतुर्भुजरूपके दर्शन कर कुंभन धन्य होगये, और घर आकर उन्होंने अपने पुत्रका नाम "चतुर्भुजदास" रक्खा। आगे चतुर्भुजदासकी भक्ति और काव्य-माधुरीसे प्रसन्न हो वल्लभाचार्यके पुत्र श्रीविट्ठलनाथजीने उन्हें अष्टछापमें सम्मिलित कर लिया। पुत्र-सम्मानका यह सौभाग्य अष्ट सखाओंमें केवल कुंभनदासको ही प्राप्त हुआ।

एक बार विट्ठलनाथजी कुंभनदासको द्वारकाकी यात्रामें साथ ले गये। पर वे अपने नन्द-नन्दनकी विरह-वेदनासे व्याकुल हो उठे। उन्होंने अपने हृदयकी व्याकुलता निम्नांकित पंक्तियोंमें प्रकट की—

केते दिन जु गए बिनु देखें।
तरुन किसोर रसिक नंद नन्दन, कछुक उठति मुख रेखें॥
वह सोभा, वह कान्ति बदनकी, कोटिक चन्द बिसेखें।
वह चितवन, वह हास मनोहर, वह नटवर बपु भेखें॥
स्याम सुन्दर सँग मिलि खेलनकी आवति हिये अपेखें।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिनु जीवन जनम अलेखें॥

श्रीगोसाईंजीके हृदयपर इस गीतका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने कुंभनदासको लौटा दिया। श्रीनाथजीके दर्शनकर कुंभनदास हर्षावेशमें गा उठे:—

जो पें चोंप मिलन की होय।

तो क्यों रह्यौ परे विनु देखे, लाख करो जिन कोय ।।
जो पें विरह परस्पर व्यापे, तो कछु जीय बने ।
लोक लाज कुलकी मर्यादा, एको चित्त न गिने ।।
'कुंभनदास' जाहि तन लागी, और कछु न सुहाई ।
गिरिधरलाल ताहि विनु देखे, छिनु छिनु कल्प बिहाई ।।

भक्तवत्सल भगवान् श्रीनाथजीने प्रसन्न होकर कहा—"सखा कुंभन ! तू कहीं भी जा, मैं तो तेरे साथ ही रहता हूँ। भक्तोंके हृदयमें मेरा वास है।"

तानसेनके द्वारा कुंभनदासकी ख्याति एवम् एक व्रजवासीके द्वारा उनके पद सुन कर, आकृष्ट हो एक वार सम्राट अकवरने कुंभनदासको पालकी भेजकर फतहपुरसीकरी बुलाया। दूतोंसे 'सम्राट' शब्द सुनते ही कुंभन साश्चर्य बोल उठे– "मेरा सम्राट तो गोवर्द्धनपर्वतपर विराजमान है।" अन्तमें दूतोंके विशेष आग्रहपर कुंभनदास पैदल ही सीकरी गए। अकवरने उनका हृदयसे आदर-सत्कार किया। पर सीकरीके विलास-पूर्ण जीवनको देखकर कुंभन मन में सोचने लगे, किस पापके फलस्वरूप यहाँ आना पड़ा। इससे तो व्रजका ऐश्वर्य वहुत ही अनुपम है, जहाँ व्रजराज श्रीनाथजी अनेक क्रीड़ाएँ किया करते हैं ?'

अकवरकी प्रार्थनापर कुंभनदासने निम्नांकित पदका गान किया—
भगतको कहा सीकरी सो काम ।
आवत जात पन्हैयाँ टूटी, बिसरि गयौ हरिनाम ।।
जाकौ मुख देखें दुख उपजै, ताको करन पर्यौ परनाम ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिनु, और सबै बेकाम ।।

अकबर सहृदय और गुणग्राही था। उसके सभासद भक्त श्रीपतिने एक वार "करौ मिलि आस अकव्वरकी" इस समस्याकी पूर्ति निर्भीकतासे इस प्रकार की थी– "जिनको हरिकी कछु आस नहीं, सो करौ मिलि आस अकव्वर की।" तव भी और अव भी अकवर तनिक अप्रसन्न नहीं हुआ। कुछ मांगनेका आग्रह करनेपर कुंभनदासने अकवरसे मांगा कि—"अव आप मुझे कभी मत वुलाना।" अकवरने आदरपूर्वक उनको घर भेज दिया।

सं० १६२० में जयपुरके महाराज मानसिंह व्रजकी यात्रा पर आये और गोवर्द्धन पर श्रीनाथजीके दर्शन किये। उस समय कुंभनदासजी भगवान्‌की श्रृंगार-छटा निहारते हुए कीर्तन कर रहे थे। उनकी कीर्तन-शैलीसे मानसिंह बड़े प्रभावित हुए और उनसे मिलने जमुनावता ग्राम गये। कुंभनदास भगवान्‌के रूपचिन्तनमें ध्यानस्थ थे। आँख खुलनेपर उन्होंने अपनी भतीजीसे आसन और दर्पण माँगे। उत्तर मिला कि आसन

(घांस, पड़िया खा गई और दर्पण (पानी) भी पी गई ।' आशय यह है कि कुंभनदास घासके पूलेका आसन विछाकर, उसपर बैठ और कठौतीके जलमें मुंह देखकर तिलक किया करते थे। कुंभनदासकी इस निर्धनताका पता पाकर मानसिंहजीने सोनेका रत्नजड़ित दर्पण एवं वहुतसा धन देना चाहा । किन्तु अत्यन्त निस्पृही, त्यागी, भगवत् लीन भक्तराज कुंभनजीने कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया। बोले—"मेरे यहाँ खेतीका अन्न पैदा होता है एवं खेतमें करील और वेर वृक्ष समय समयपर फल देते हैं। इनसे हमारा निर्वाह बड़े आरामसे होता है ।' विशेष आग्रह करनेपर भक्त कुंभनने मानसिंहसे याचना की— "कृपया आप शीघ्रातिशीघ्र यहाँ से चले जाँय और फिर कभी भी पधारनेका कष्ट न करें।" मानसिंह कुंभनदासके अद्भुत त्यागकी सराहना करते हुए कह उठे— "मायाके भक्त तो मैंने पृथ्वी पर वहुत देखे हैं, परन्तु सच्चे भक्त तो आज आप ही दिखाई पड़े हैं।"

भक्त-भय-भंजन श्रीनाथजीकी कुंभनदास पर इतनी प्रेममय कृपा थी कि एक क्षण भी एक दूसरेको देखे विना अत्यन्त व्याकुल हो जाया करते थे। बिहागरो, रामकली, सारंग, नट, केदारो, धनाश्री, श्रीराग, मालकोश, रागोंमें कुंभनदासने युगल-स्वरूप सम्बन्धी कीर्तन पद रचे । उन्होंने हरिरसका अनुभव ही आचार्यजीसे माँगा था । भगवान्की वधाई,पलना,एवम् वाललीला संवन्धी पदों और गीतोंकी रचना उन्होंने नहीं की। वे श्रीठाकुरजीकी दिवसकी लीलामें "अर्जुन" सखा एवम् रात्रिलीलामें श्रीस्वामिनीजीकी विशाखा सखी माने गये हैं। आचार्यजीकी आज्ञाके अनुसार इन्होंने समय-समयपर अनेक पद बनाये हैं, जिन्हें सुन अत्यन्त प्रसन्न हो गुरु आचार्यजी इन्हें खूब आसीष दिया करते थे। शङ्खनाद, मंगला, शृंगार, राजभोग, उत्थापन, शयन, आरती एवम् छओं ऋतुओंमें जव-जव जिस शृङ्गारके दर्शन होते, तव-तव उन्हीं भावोंके सरस, भक्तियुक्त, माधुर्य पूर्ण पदोंका निर्माणकर कुंभनदासजी मृदंग, वीणापर उन पदोंको सुरीले रागमें गाते, जिन्हें सुनकर दर्शक एवं भगवत्जन अत्यधिक प्रसन्न होकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे।

११५ वर्षकी आयुमें वृद्धावस्था आजानेपर भी कुंभनदास अपने पुत्र चतुर्भुजदास को साथ लेकर नित्य जगुनावतासे श्रीनाथजीके दर्शनार्थ जाया करते थे। एक दिन अत्यन्त निर्वलताके कारण आन्यौरके निकट संकर्षण कुंडपर बैठ गये। चतुर्भुजदासने कहा कि "मैं आपको कंधेपर बिठाकर घर ले चलूँ ?" तव वे वोले—"वेटा, अव घर चलकर क्या करना है ? थोड़े समयमें शरीर छूटने ही वाला है।" गोसाईं विट्ठलनाथ जी भी उनके देहावसानके समय वहाँ आ गये थे। उन्होंने पूछा—"इस समय आपका मन किस लीलामें लगा है ?" तव कुंभनदासने तुरन्त यह पद गाया :—

"लाल तेरी चितवन चितहि चुरावै।"

इसके पश्चात् भगवान्‌के युगल-स्वरूपकी छविको ध्यानमें रखकर भक्तराज कुंभनदासने यह पद गाया:—"

> रसिकनी रसमें रहत गढ़ी।
> कनक बेलि वृषभानुनन्दिनी स्याम तमाल चढ़ी॥
> बिहरत श्रीगिरिधरन लाल सँग, कोने पाठ पढ़ी।
> 'कुंभनदास' प्रभु गोबरधनधर रति रस केलि बढ़ी॥

यह पद गाते हुए कुंभनदास देह छोड़कर निकुंज-लीलामें समा गये। श्रीगोसाईं जीने करुणस्वरमें उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए कहा— "आज ऐसे सच्चे भगवदीय हरिभक्त अन्तर्धान होगये। अब पृथ्वीतलसे शनैः शनैः भगवत्भक्तोंका तिरोधान होने लगा है।"

वास्तवमें भक्त कुंभनदासजीमें सभी दैवीगुणोंका समावेश था। उन्होंने दरिद्रावस्थामें सुख माना और "त्रिदुःख सहनं धैर्यम्" श्रीआचार्यके इस वाक्यको अपने जीवन में उतारकर अहर्निशि श्रीनाथजीके ध्यान, धारणा, स्मरण, कीर्तनमें सख्यभावसे लगे रहे। वे त्याग, तपस्या, निस्पृहता और निश्छल भक्तिभावके आदर्श स्वरूप थे। उन्होंने श्रीभगवान्‌के समय-समयके स्वरूप-शृङ्गारके अनेक गेय पदोंकी जो रचना व्रजभाषामें की है, वह आज भी हिन्दी-साहित्यकी धरोहर है।

सुखका सार—केवल धर्म

जो यह समझकर कि अरे धर्म कहाँ है, धर्म तथा धर्मात्माओंका उपहास करता है, वह विनाशको ही प्राप्त होता है।

अधर्मात्मा पुरुष कभी-कभी रावण, हिरण्यकशिपु, दुर्योधन आदिके समान बढ़ते हैं, पर अन्तमें उनका भीषण विनाश हुए भी बिना नहीं रहता।

अकेला धर्मही सर्वत्र सहायक—रक्षक होता है।

धर्म से ही अर्थ–काम–मोक्षादि सभी सुख मिलते हैं। धर्म ही सभी पुरुषार्थोंका मूल है। धर्मलेशमें भी जो आन्तरविशुद्ध सात्विक सुख-आनन्द उपलब्ध होता है, वह अर्थ कामादिमें कहाँ है?

जो तन धनादिसे धर्माचरणमें सर्वथा असमर्थ हो, उसे भी कम-से-कम मन से ही सबके कल्याणकी कामना करनी चाहिए।

—o—

ईश्वरकी आराधनाकी उपयोगिताका सार चित्र

"ईश्वर हम सबके पिता, पालक और संरक्षक हैं। उन्होंने हमें क्या नहीं दिया है? अतः हमें अपनी साँसोंको उनकी भक्तिका दाम बनाकर अवश्य उनके ही चरणोंपर अर्पित कर देना चाहिए। साँसोंके इस समर्पणमें ही मानवजीवनका लक्ष्य निहित है।"

प्रभु और उनकी आराधना-अर्चना

श्रीअशोक एम० ए०

इस युगमें जबकि मृत्युकी विभीषिका हमें सम्पूर्ण रूपसे निगलनेकेलिये तैयार है, तब ईश्वरकी आराधनाका महत्व और भी आवश्यक हो जाता है। यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो हमारा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य भगवान्‌की प्रेमपूर्ण प्रार्थनाओंसे परिपूर्ण है, पर कितनी लज्जा और ग्लानिकी बात है कि समयके प्रभावसे हम ने आराधना तो आराधना, भगवान्‌तकको हृदयसे भुला दिया है। आज हम विषय और वासनाकी 'मृग-मरीचिका' की ओर इस भाँति दौड़े चले जा रहे हैं कि हमें अपने आपका पता तक नहीं है। भोग-विलासकी सामग्रियोंने हमारे ज्ञान-चक्षुओंपर अन्धकार और विनाशका पर्दा डाल दिया है। हम ईश्वरको भी स्वार्थके चश्मे द्वारा देखते हैं। हमारे हृदयमें कलुषित भावनाओं ने इतनी गहरी जड़ें जमाली हैं कि हम दिन-प्रतिदिन उसे अपने ही हाथोंसे सींचते हुए पनपनेमें सहायता दे रहे हैं। क्या यह सब कुछ हमारे लिए घोर कलंक और पतनकी बात नहीं है?

हमारे समाजके प्रत्येक शुभ कार्यके प्रारम्भमें देवताओंके आदि पूज्य, विघ्नहर्ता, मंगलमूर्ति गणपतिकी पूजा की जाती है। आज इस नास्तिकताके युगमें भी, जब कभी मनुष्य पर घोर आपत्ति आती है, तब वह उससे त्राण पानेकेलिए, ईश्वरको बारम्बार

याद करता है। आज इस सभ्य संसारमें नास्तिकताका बोलबाला है और जिसका प्रधान कारण है, 'पाश्चात्य शिक्षाप्रणाली'! हमारे देशके उच्च शिक्षाप्राप्त नवयुवक ईश्वरकी आराधनाके महत्वको भूलते जा रहे हैं।

आजकलके पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त युवकोंकी दृष्टिमें ईश्वरकी आराधना एक आडम्बर है। वे ईश्वरकी पूजाको, प्रार्थनाको ठीक नहीं समझते हैं। पाश्चात्य दार्शनिक ईश्वरको बुद्धिके द्वारा जाननेका असफल प्रयत्न करते हैं। पर हमारे आदर्श ईश्वरको तर्कका विषय नहीं मानते। वे तो उसे साधना और अनुभवका विषय बतलाते हैं। ईश्वरीय ज्ञानकेलिए तर्कोंकी आवश्यकता नहीं है, बल्कि आवश्यकता है शुद्ध भावना और पवित्र अन्तःकरण की। जब तक आत्मा पवित्र नहीं है, तब तक परमेश्वरकी अनुभूति नहीं हो सकती। आत्माकी पवित्रताकेलिए सदाचार और नीतिपूर्ण जीवनकी आवश्यकता है और ईश्वरकी आराधनाके बिना मनुष्यका जीवन सदाचारी, परोपकारी और नीतिपूर्ण नहीं हो सकता। इसीलिये सच्चे जीवन और मोक्षकी प्राप्तिकेलिए ईश्वरकी आराधनाका महत्व और अधिक बढ़ जाता है। हमारे देशमें एकसे एक प्राचीन ऋषि, मुनि और तपस्वी हो गये हैं, जिनके जीवन-चरित्रोंसे हमें यह परिचय मिलता है कि उन्होंने अपने जीवन-कालमें ईश्वरकी आराधनाको अपना एक प्रमुख कार्य बना लिया था। फिर भी जो लोग प्राचीन ऋषि, मुनि या ग्रन्थोंकी बातें नहीं मानते, उन्हें दिवंगत पूज्य बापूके जीवनसे शिक्षा लेनी चाहिए। उनका हृदय ईश्वरकी आराधना तथा प्रार्थनासे सदा ओतप्रोत रहता था। उनकी 'रामधुन' तो आज भी बड़े प्रेम, श्रद्धा और लगनसे गाई जाती है। उनका जीवन परोपकारी, सदाचारी और शान्तिपूर्ण रहा है। भगवान्‌की आराधना करनेवालेका हृदय सदैव निर्मल, निष्कपट और छल-कपटसे-परे रहता है। उसका हृदय स्वभावतः दयालु होता है और वह दूसरोंके दुःखसे शीघ्र ही द्रवित हो जाता है। वह सर्वदा दूसरोंके दुःख-निवारणके लिए चिंतित रहता है और समय पड़नेपर अपने प्राणोंकी बाजी भी लगा देता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ईश्वरकी आराधना क्यों की जाय? वह क्या यह चाहता है कि लोग पहले उसकी आराधना करें, तब कहीं कोई दूसरा कार्य करें? नहीं, यह बात नहीं है। वह तो सर्वव्यापी और घटघटवासी है। उसे याद दिलानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम आराधना तो अपने ही लाभकेलिए करते हैं, जिससे हमारे हृदय पवित्र हो जायें। हम ईश-आराधनाके बिना किसी भी कार्यमें सफल नहीं हो सकते।

मनुष्य हजार प्रयत्न करे, किन्तु जब तक उसके कार्यमें ईश्वरका हाथ नहीं है, तब तक वह कदापि सफल नहीं हो सकता। जो लोग चाहते हैं कि उनकी आत्मा शीघ्र ही पवित्र हो जाये, उन्हें ईश्वरकी आराधना अवश्य करनी चाहिए।

आराधना हमारे पश्चातापकी एक प्रधान भूमिका है। हम आराधनाकेद्वारा अपने

हृदयके कुविचारोंको सद्‌विचारोंमें परिवर्तन कर सकते हैं। यह कठोर सत्य है कि हम पर जब कभी एकाएक दारुण विपत्ति आ जाती है, तब हम जगत्‌पिता परमात्माका ही आश्रय ग्रहण करते हैं। उस अचानक आपत्तिसे त्राण पानेकेलिए हम उसकी कई प्रकार से प्रार्थना करते हैं, कई प्रकारसे आराधना करते हैं। श्रीसत्यनारायण भगवान्‌की कथा का आयोजन क्या हमारी आराधनाका ही अंग नहीं है? क्या इसके द्वारा हम अपने ऊपर आई हुई विपत्तियोंसे छुटकारा पानेका यत्न नहीं करते हैं? राष्ट्रोंने भी आपत्तिकालमें ईश्वर की आराधनाको ही महत्व दिया है। अनावृष्टि, घोर अकाल, सूखा, महामारी आदि भीषण स्थिति उत्पन्न हो जानेपर क्या हमने आराधनाका आयोजन नहीं किया है? आराधना की कार्यकारिता सभी ईश्वरवादी मतोंने स्वीकार की है। जिसकी जिस कामनाको लेकर सच्ची प्रार्थना और आराधना होती है, वह अवश्य पूर्ण होती है। संसारकी कामना करने वालेको सांसारिक सुख प्राप्त होते हैं और ब्रह्मकी कामना करनेवालेको ब्रह्म प्राप्त होता है।

लौकिक दृष्टिसे देखा जाय तो योगक्षेमसे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि आराधक सच्ची निष्ठासे प्रभुकी आराधना करे तो भगवान् उसकी सब प्रकारसे सहायता कर इच्छित फल और वर प्रदान करते हैं। सतत आराधना और भगवत् चिन्तनसे प्रार्थीके विचारों में अभूतपूर्व परिवर्तन होता है।

प्रार्थना और आराधनाके प्रभावसे ही ध्रुव, प्रह्लाद, द्रौपदी, गजेन्द्र, तुलसीदास, तुकाराम, रामदास आदि भक्तोंको मोक्षकी प्राप्ति हुई। भगवान्‌की उचित आराधना समस्त दोषों और पापोंका उन्मूलन करके प्राणीको सन्मार्ग पर लाती है और सब प्रकारका कल्याण सम्पादन करती है। गीतामें स्वयं भगवान्‌ने कहा है—'जो प्राणी अनन्य भावनासे सम्यक् उपासना करते हैं, उन योगयुक्तोंके योग और क्षेमका निर्वाह मैं ही चलाता हूँ—'

> 'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
> तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम् ॥'

संसारके सभी धर्म आराधनाकी आवश्यकता एवं उपयोगिताको स्वीकार करते हैं। विधानों या सिद्धान्तोंमें भले ही मतभेद हो सकता है। जिस तरह सूतका धागा रंग-बिरंगे पुष्पोंको ग्रथित करके एक सुन्दर हारके रूपमें बदल देता है, ठीक उसीप्रकार यह आराधना सभी ईश्वरवादी समुदायोंको समन्वयके सूत्रमें पिरोये हुए है।

आराधना लौकिक, पारलौकिक सुख, शान्ति और मोक्षकी एक ऐसी कड़ी है, जिसके सहारे ही मनुष्यको 'सबकुछ' प्राप्त हो सकता है। अतः मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है कि वह अपने जीवनमें आराधनाको प्रमुख महत्व दे।

●●●

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान--श्रीविजयोत्सव

श्रीवंशीधर उपाध्याय

'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'—यह एक चिर पुरातन, भारतीय सिद्धान्त वाक्य है। इस वाक्यमें 'जन्मभूमि' के प्रति भारतीयोंकी चिर निष्ठा और आस्था निहित है। वैदिककालसे लेकर और अब तकके साहित्यमें, भारतीयोंकी इस निष्ठा और आस्थाके अनेक परमोज्वल चित्र प्राप्त होते हैं। वेदों और उपनिषदोंमें बार-बार ऐसे कथा-चित्र और मन्त्र मिलते हैं, जिनमें 'जन्मभूमि' का स्तवन तो है ही, उसके कल्याणकेलिए मर-मिटनेकी भावना भी है। पुराणोंमें भी ऐसी बहुत सी कथाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें 'जन्मभूमि' का प्रेम और 'आस्था' साकार दृष्टिगोचर होती है। आधुनिक साहित्य, जो बहुत कुछ आधुनिक युगकी ही देन है, 'जन्मभूमि' की 'श्रद्धा' और 'प्रेम' भावनासे ओत-प्रोत है। भारतीय साहित्य और भारतीयोंकी इस विशिष्टताको दृष्टिमें रखते हुए, हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि भगवान् श्रीकृष्णके मनमें भी अपनी 'जन्मभूमि' के लिए अधिक प्रेम और अधिक आस्था रहती होगी। यद्यपि वे राग-विरागसे रहित, अनन्तसत्ता, परम प्रभु हैं, परन्तु उन्होंने जब धर्म संस्थापनार्थ जन्म धारण किया, तब उसके साथ ही साथ मथुराके एक विशिष्ट भूखंडको उनकी 'जन्मभूमि' होनेका महान् गौरव भी प्राप्त हुआ। यद्यपि उनके अवतरण और लीलाविहारसे सम्पूर्ण व्रजप्रदेश एक अक्षय तीर्थके रूपमें परिणत हो गया, पर मथुराका वह भूमि खण्ड, जिसे उनकी 'जन्मभूमि' होनेका महान् गौरव प्राप्त हुआ, कुछ और ही पावनता और विशिष्टता रखता है। इसी क्रममें यह भी कह सकते हैं कि भगवान्की कृपा-दृष्टिमें व्रजके अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा, उसका स्थान सबसे अधिक सन्निकट है। यह इसलिए कि वह उनकी जन्मभूमि है। जब देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी भी अपनी 'जन्मभूमि' को 'स्वर्गादपि गरीयसी' समझकर उसे सँवारते-सिंगारते ही नहीं, वरन् उसकी कल्याणकी वेदिका पर आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देते हैं, तब भला 'दया', 'मया' के पुंज भगवान् श्रीकृष्णके मनमें अपनी 'जन्मभूमि' के लिए 'स्नेह' और 'आस्था' क्यों न होगी? प्रश्न हो सकता है कि अखण्ड शक्तिधारी, त्रिलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके मनमें जब अपनी 'जन्मभूमि' के प्रति आस्था थी, तो उनकी 'जन्मभूमि' पर उन्हींके नामपर बना हुआ श्रीकेशवदेवजीका मन्दिर बार-बार क्यों विधर्मियोंकेद्वारा विध्वंसित किया गया और यवन कालसे ब्रिटिश शासन तक क्यों उनकी 'जन्मभूमि' उपेक्षिताके रूपमें पड़ी रही? इसका केवल एक ही उत्तर है और वह यह कि भगवान्को मानवकी कुरूपताओं और विकृतियोंको लुंज पुंज करके धर्म और सत्प्रवृतियोंका भव्य प्रासाद खड़ा करना ही इष्ट है। उनकी 'जन्मभूमि' का मन्दिर मानव

की कुरूपताओं और विकृतियोंके कारण ही वारवार तोड़ा गया और मानवकी कुरूपताओं और विकृतियोंके ही कारण उनकी 'जन्मभूमि' सदियों तक उपेक्षिता भी पड़ी रही, पर इसके साथ ही साथ यह भी तो सत्य है कि उनकी प्रेरणासे वारवार उसपर धर्म और सत्प्रवृतियोंका भव्य प्रासाद भी निर्मित हुआ। आज भी उन्हींकी प्रेरणा और अनुकम्पासे पुनः उस पर श्रीमद्‌भागवत् भवनके रूपमें विशाल पुण्य प्रासाद निर्मित हो रहा है। हमें इसे श्रीकृष्ण भगवान्‌का 'जन्मभूमि' के प्रति 'स्नेह' और 'श्रद्धा' ही समझनी चाहिए। उन्हींके 'स्नेह' और 'श्रद्धा' का यह परिणाम है कि मथुरा की चिर पुरातन नगरीका चिह्न, जव पुरातत्ववेत्ताओंके अधिक प्रयास पर भी अभी विवादास्पद ही वना हुआ है, 'जन्मभूमि' का चिन्ह अखंडित रूपमें विद्यमान है। कोई कहे या न कहे, पर हम तो यही कहेंगे कि आततायियोंके उस भीषण प्रयास-युगमें, जव उन्होंने मथुराको मिटा देनेकेलिए वारवार अपनी क्रूरताका वज्र छोड़ा था, 'जन्मभूमि' की अखंडता श्रीकृष्ण भगवान्‌के 'स्नेह' और 'श्रद्धा' के ही कारण सुरक्षित वनी रही। आज उनका 'स्नेह' और उनकी 'श्रद्धा' 'जन्म-भूमि' के प्रति साकार रूपमें प्रकट हो रही है। 'जन्मभूमि' के नव निर्माण और शृङ्गारमें आज उनकी 'श्रद्धा' ने 'एकोऽहम् बहुस्याम' का रूप धारण कर लिया है। वह दिन दूर नहीं, जव उनका 'स्नेह' और उनकी 'श्रद्धा' उन्हींके अनुरूप होकर उनके चरणोंपर समर्पित हो जायगी।

श्रीविजयोत्सव

श्रीकृष्ण जन्मभूमि आये दिन पर्वों और त्यौहारोंके उत्सवों तथा समारोहोंसे आकर्षण का केन्द्र वनती रहती है। जन्मस्थानके भव्य रङ्गमंच पर रासलीला और नाटक तथा कथा-कीर्तनके क्रम चलते ही रहते हैं। इन उत्सवों तथा समारोहोंमें, कभी-कभी लक्ष-लक्ष दर्शकोंकी तुमुल भीड़ देखी जाती है। विगत सितम्बर मासके दूसरे पखवारेमें, लगभग पन्द्रह दिनों तक विजयोत्सवकी धूम रही। १५ सितम्वरकी सायंवेलामें समारम्भ हुआ विजयोत्सव अक्टूवरके प्रथम सप्ताहमें राज्याभिषेकके साथ सम्पन्न हुआ। विजयोत्सवके उपलक्ष्यमें श्रीराम चन्द्रजीके पावन चरित्रके आधार पर रचित लीलाके सम्वादों, गीतों और मधुर वाद्योंकी ध्वनि से जन्मस्थानका रंगमंच प्रतिदिन रातमें ध्वनित हुआ करता था। प्रतिदिन रातमें जन्मभूमि विजलीके रंगविरंगे वल्वोंकी मुसुकुराहट्के साथ ही साथ अपार दर्शकोंकी उमड़ती हुई श्रद्धासे दिव्य इन्द्रपुरी सी ज्ञात होती थी। यों तो सभी लीलाएँ दर्शकोंको विभोर कर देती थीं, पर धनुषयज्ञकी सफलतामें तो पङ्ख लग गये थे। श्रीरामकी विनम्रता, लक्ष्मणका वीरता जन्य रोष, और परशुरामकी कोप-संयुता वाणीने सचमुच दर्शकोंके मनको अपनेमें डुवा दिया था। रामलीलाकी सफलताका श्रेय मंडलीके संचालक और पात्रोंके साथ ही उसके कर्मठ मंत्री और अध्यक्षको है, जो रात-रातभर जागकर अपनी श्रम-साधनासे उसे सफल वनाने में योग देते रहे। कहना ही पड़ेगा कि ये सव जनताकी वधाईके पात्र हैं। हम भी उनकी सफलता पर उन्हें हृदयसे वधाई देते हैं।

शुभकामनाओं सहित—

डालमिया सिमेंट (भारत) लिमिटेड

डालमियापुरम् (मद्रास राज्य)

"राकफोर्ट" मार्का डालमिया पोर्टलैण्ड एवं पोज़ोलाना सिमेंट तथा डालमिया रिफ्रैक्टरीज़ के निर्माता।

उड़िशा सिमेंट लिमिटेड

राजगंगपुर (उड़िशा राज्य)

"कोणार्क" मार्का डालमिया पोर्टलैण्ड एवं पोज़ोलाना सिमेंट, हर प्रकार और आकारकी रिफ्रैक्टरीज, आर० सी० सी० स्पन पाइप्स तथा प्रीस्ट्रैस्ट कंक्रीट सामान के निर्माता।

मुख्य कार्यालय :

४, सिंधिया हाउस,
नई दिल्ली

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके रंगमंचपर प्रदर्शित रामलीलाका एक भव्य दृश्य

पंजीयत सं० एल-८२७

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके लिये देवधर शर्मा द्वारा श्रोम प्रिंटिंग प्रेस, मथुरामें मुद्रित तथा प्रकाशित। आवरण मुद्रक : राधाप्रेस, गांधीनगर, दिल्ली-३१